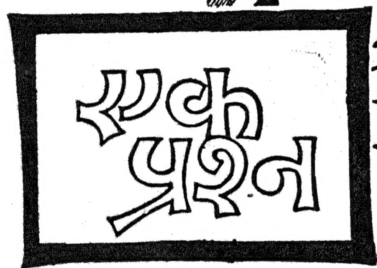
एक प्रश्न

भगवतीप्रसाद वाजपेयी



भगवतीप्रसाद वाजपेयी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली



मूल्य : साढ़े तीन रुपये
प्रथम संस्करण : जून, १९६१
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

१

ट्रेन चली जा रही है। उधर डब्बे में लेटे हुए स्त्री-पुरुषों की भांति-भांति की रूप-रेखाएं, उनके वार्तालाप के मन्द स्वर, कानों में फुसफुसाने की आवाज़ तथा उनकी भंगिमाएं देख-देखकर चित्त चंचल हो उठता है। डब्बा हिल रहा है। कमलेश के संस्कार हिल उठते हैं। क्षीण प्रकाश में भीतर-बाहर आधी रात का अंधेरा है। तारुण्य-गर्वित शीत की विविध आवश्यकताओं और मांगों का धुंधलका।

डब्बे में आठ-दस व्यक्ति लेटे हुए हैं। कोई ऊंघ रहा है, तो कोई सो गया है। व्यक्तियों और उनके ओढ़ने-बिछाने के अनेक रूप-रंगों का यह सम्मेलन कुछ अभिनव प्रेरणाएं जगाने लगता है। नीली, हरी, लाल, पीली और काली रेखाओं के वस्त्रों में मिश्रित-अमिश्रित रंगों, सीधे और बंकिम मोड़ों और उनके बीच भरे हुए पुष्प-पल्लवों, टहनियों, हिरनों, मोरों, बतखों और सारसों के सीधे-मुड़े, बैठे या पंख फैलाए स्वरूपों को जब वह उड़ता देखता है, तब लगता है कि संसार की सभी वस्तुएं चल रही हैं, भाग रही हैं, उड़ रही हैं। यहां तक कि इन व्यक्तियों के अन्दर सोए हुए मन भी अपने प्रियजनों के साथ भाग रहे हैं, उड़ रहे हैं।

उस डब्बे के उत्तरार्ध की दो बेंचों पर जो व्यक्ति लेटे हुए हैं, उनमें बीच की सीट पर कमलेश है। वह वास्तव में, अपने कार्य-क्रम की योजना लेकर, और घिसे-पिटे लोगों की दृष्टि से, निरुद्देश्य घूमने को, निकल पड़ा है। उसका क्लीनशेव्ड मुख प्रकृत गेहुंए वर्ण का है; उसके केश ऊपर की ओर मुड़े, संवारे हुए हैं। एक मफ़लर उसने अपने कानों में लपेट रखा है। दूसरी ओर चालीस-पैंतालीस का कोई दूसरा व्यक्ति

है। पूरी बेंच पर दोनों परस्पर प्रतिकूल दिशाओं की ओर पैर किए हुए इस तरह लेटे हैं कि दोनों के सिर और उनके आधारभूत तकिये परस्पर मिले-जुले-से जान पड़ते हैं। तारीफ की बात यह है कि कोई किसीसे पूर्व परिचित नहीं है। यह एक ऐसा यात्रा-प्रसंग है, जो विपरीत परिस्थितियों, स्थानों, जातियों और उनके शील-स्वभाववाले नाना व्यक्तियों को इस प्रकार संलग्न कर देता है, जैसे वे सबके सब एक ही परिवार के हों। इस प्रकार देखें तो वह संयोग भी, जो एक निर्माता और स्रष्टा है, है बड़ी विचित्र खोपड़ी का !

दूसरी बेंच इसके ठीक सामने पड़ती है, जिसमें खिड़कियां लगी हैं। उसपर दो स्त्रियां परस्पर विपरीत दिशाओं की ओर लेटी हुई हैं। इन स्त्रियों में एक तो सावन के मेघ-सी नवयुवती है, दूसरी ढलती दोपहर-सी अधेड़। युवती की गुंथी बड़ी केश-राशि क्रमशः पतली होती हुई, उसकी कमर को भी पार कर गई है। वह भीतर दुशाला और ऊपर से मुलायम कम्बल डाले हुए है। उसकी बाईं नाक पर स्वर्ण-मण्डित हीरे की एक कनी है। और भाल पर नारंगी-वर्ण का, श्वेत बुंदकियों से घिरा एक मुकुट बना है। उस कनक-छरी-सी कामिनी के भाल की वह मुकुट छवि और हीरे की कनी की झलक, ऐसी सजग-पुलकित है कि अकस्मात् साधारण रूप से करवट बदलते हुए, कमलेश की दृष्टि कभी-कभी उसपर पड़ ही जाती है। कोई नहीं जानता कि इस दृष्टि में उसका प्राण-पंछी कुछ कहता भी है। कोई नहीं कह सकता कि दृष्टि ही कुछ कहती है, या उसकी करवट भी कुछ न कुछ कहकर कुछ चाहती या मांगती है।

भीतर गाड़ी के दौड़ने का एकरस स्वर है। बाहर ओस-कणों से भीगती हुई रजनी का घोर सन्नाटा। और सन्नाटा क्या है, एक नीरवता का आभास। कमलेश करवटें बदल रहा है। हो सकता है, युवती के मन का स्वाद भी बदल रहा हो। जितना गहन शीत है, उससे भी अधिक समर्थ कमलेश का कम्बल। बैडिंग के भीतर पड़ा हुआ मुलायम गद्दा नीचे से शीत-निवारण में यथेष्ट तत्पर है। लेटने और पग-विस्तार की मर्यादा

में कहीं कोई ऐसा अभाव नहीं है, जिसका उसे अभ्यास न हो। फिर भी उसकी आंखों में नींद नहीं है। उसका सहयात्री बीच में उठ-उठकर, उस युवती के ऊपर पड़े हुए कम्बल को, जो कभी बेंच के नीचे लटककर उस अनंग लता-सी नारी के किसी न किसी अंग को खोल देने की धृष्टता करने लगता है, पहले ऊपर डालकर फिर उसके छोर को बिस्तर के नीचे खोंसकर स्थिर किंवा चुप कर देता है।

कमलेश नींद के अभाव में समय-समय पर सिगरेट पीता हुआ कभी कलाई-घड़ी देखने लगता है और कभी एक उपनिषद् के पृष्ठ उलटना शुरू कर देता है।

अब डेढ़ बज रहा था और कमलेश का वह सजग सहयात्री भी प्रगाढ़ निद्रा में लीन होकर खर्राटे भर रहा था। ट्रेन उड़ी जा रही थी। डब्बे का झकझोर तीव्र स्थिति में जा पहुंचा था। युवती करवट बदल रही थी। अभी तक वह कमलेश की ओर पीठ किए हुए थी: अब उसकी ओर उसका मुख हो गया था—जिससे उसकी देह-यष्टि का सारा चढ़ाव-उतार उसकी नाना परिकल्पनाओं को छू रहा था। कोई सोते समय जब यही नहीं जानता कि वह कहां और कैसी स्थिति में है, तब और किसी को क्या पता रह सकता है कि उसका अवचेतन मन पुतलियों में ही तैर रहा है, या किसी जलाशय में बैठकर इतमीनान से स्नान कर रहा है।

दुनिया के राग-रंग, उसकी गति-विधि ही जब स्थिर नहीं रहती, तब चलती गाड़ी में किसी नारी के ऊपर पड़ा हुआ कम्बल और उसके नीचे लगा हुआ दुशाला क्या चीज़ है! फिर जब बेंच की चौड़ाई ही बहुत कम हो, तब वस्त्र तो खिसकेंगे ही।

परिधान में पहले साड़ी है, फिर स्वेटर, उसके भीतर ब्लाउज़ और फिर कंचुकी। ग्रीवा से नीचे कुछ दूर जो बड़े-बड़े सेब-से गोलाकार उरोज हैं, वे वक्ष से उठकर सम्पूर्ण देह-लता पर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो किसी लम्बे लहराते जलाशय में मंदिर खड़ा हो, जिसका दो-तिहाई भाग डूबा हो और केवल गुम्बद ही ऊपर सांस ले-लेकर उठता-गिरता जान पड़ता

हो। एकाएक उसने आंखें मूंद लीं। फिर उसके भीतर से एक निश्वास फूट पड़ा—ना, ऐसी-ऐसी अनेक सम्भावनाओं को वह अपने पीछे छोड़ आया है। अब ऐसा कुछ सोचना उसके लिए पागलपन है।

—लेकिन फिर नींद क्यों नहीं आ रही है ?

—न आए नींद, मुझे आंख खोलकर चलना है, आंखें खोलकर बैठना, लेटना, रहना—यहां तक कि सोना भी है। मुझे देखना है कि मैं स्वयं क्या हूं, मुझमें कितनी आस्था है और कितनी अस्तित्व की दासता, हां गुलामी, गुलामी।

तब वह पुन: कुछ देखने लगा। देखते-देखते फिर चिन्तन में लग गया, 'पता नहीं क्यों, मुझे इस नारी के मुख पर लवंग की मुद्रा जान पड़ती है।'

उत्थान और पतन की यह प्रक्रिया जीवन में गति का परिचय देती है। लेकिन वह यह सोचना व्यर्थ समझता है कि गति के अनुभव में पतन का भी अपना एक मूल्य होता है। एक तो उसकी आंखों में नींद नहीं है, दूसरे ये आंखें अपना आचार-धर्म समझती हैं। साफ दिखाई देता है कि इन परिधानों में लुप्त रहता हुआ युवती का जो एक रेशमी रूमाल है, जिसमें उसके अधरदलों का पराग-रंजित चिह्न है, करवट बदलने में उसका कोई एक बढ़ता हुआ कोना सीट के नीचे लटक रहा है।

तो क्या प्रकृति का प्रत्येक धर्म उच्छृंखल होता है ? लोग कहते हैं—मानव-हृदय बड़ा असंयमी और उद्धत होता है। वे यह नहीं देखते कि मनुष्य ही नहीं, उसके सम्पर्क में रहनेवाले ये अचेतन पदार्थ भी कभी-कभी अपने को गिराकर किसीका मर्म छू लेते हैं, मन चूम लेते हैं ! या फिर कुछ ऐसी बात है कि प्रकृति सर्वत्र एक-सी है; मनुष्य जो चाहता है, प्रकृति उसकी पूर्ति करती रहती है। या फिर जहां कहीं प्रकृति है वहीं मनुष्य की अपनी सत्ता है !—अपनी आसक्ति, अस्तित्व की मांग और दुर्निवार लालसाएं।

बाप रे ! यह ट्रेन है कि भूचाल ! धक्के पर धक्के इस भांति लगते जाते हैं कि शरीर के अत्यधिक हिलने-डुलने के कारण युवती का रूमाल

सरकता-सरकता अन्त में बेंच के नीचे गिर पड़ा।

कैसी विचित्र लीला है इस जीवन की ! कोई किसीसे बोला नहीं, लेकिन उसने खेलना प्रारम्भ कर दिया !

पहले उसने सोचा, 'मैं इसे क्यों उठाऊं ?' क्या ज़रूरत है कि मैं इसको उठाकर उसी बेंच के ऊपर रख दूं ?' फिर वह अपने-आपसे पूछने लगा, 'वह अधेड़ स्त्री, इसकी नौकरानी है कि नींद की नानी ? जब से लेटी है टस से मस नहीं हुई। पर·······लो, वह तो जगती है,····उठती है, उठती है, उठी, उठी। अरे, वह तो चल दी ! ओः ! लैट्रिन को चली गई।······बाबूजी सोते क्या हैं, लकड़ी पर खराद के स्वरों की नक्काशी करते हैं।·······लो, वह आई, वह आई और फिर लेट रही। पेट क्या है, दलदल की पैरोडी है ! मगर···मगर, लो वह फिर सो गई। जैसे नींद उसकी मुट्ठी में हो !—दो आने की नींद मुझे दे देती तो मैं तेरा बड़ा उपकार मानता, मेरी भावी ससुराल की भैंस !······चुप ! यही हाल रहा, तो तुम पागल हो जाओगे।······तो अब इसी बात पर एक सिगरेट चल सकती है।'

ट्रेन खड़ी थी और बाबूजी उठकर, आंखें मल रहे थे। फिर कमलेश को जगता हुआ देखकर बोले, "टूंडला है क्या ?"

"जी !" उत्तर में कहकर वह उठकर बैठ गया। फिर सोचा, 'पहले "टूं" है, फिर डला। यानी एक बर्तन है, गहरा और बड़ा जिसकी जाति का नाम है 'टूं"।'

"आप कहां जाएंगे ?"

"दिल्ली।"

"अच्छा, तो आप भी दिल्ली जा रहे हैं !······क्या वहीं आपका दौलतखाना है ?"

"दौलतखाना तो जनाब अब मुगल सम्राट के अवशिष्ट उत्तराधिकारियों तक का नहीं रहा ; मेरा क्या होगा ! वैसे मैं रहनेवाला कानपुर ज़िले का हूं। चारे-दाने की खोज के सिलसिले में दिल्ली जा रहा हूं।"

कमलेश की बात सुनकर पहले उनकी मुद्रा कुछ गम्भीर हो गई थी; किन्तु फिर क्रमशः प्रकृत-प्रसन्न होती गई। मौन का अवलम्ब न लेकर उन्होंने फिर प्रश्न कर दिया, "माफ कीजिएगा, आप किसी विश्वविद्यालय में विद्यार्थी······?"

अमन्द परिहास के झकोर में कमलेश पहले मुस्कराने लगा, फिर बोला, "अफसोस कि आप ज्योतिषी होते-होते रह गए, बात पूरी करते-करते रुक गए······। मैं विद्यार्थियों को चरानेवाला एक प्राध्यापक हूं।"

अनायास उस सहयात्री के मुंह से निकल गया, "आप तो बड़े दिलचस्प आदमी जान पड़ते हैं!"

फलतः दोनों हंस पड़े।

युवती जग पड़ी थी। पहले कानों में भनक पड़ी, तो जान पड़ा, वे किसीके साथ हंस रहे हैं, खूब कहकहेबाज़ी चल रही है। फिर आंखों की पलकें उठाते-खोलते हुए देखा कि ठीक सामने जो व्यक्ति बैठा है उसका अपना एक व्यक्तित्व है।

कुछ क्षणों तक युवती ने कुछ सोचा : कभी इधर दृष्टि डालकर, कभी उधर। कभी यात्रागत वातावरण पर और कभी कमलेश के वेश-विन्यास पर। कभी मुद्रा की अभिनव ज्योति पर, कभी अपने भविष्य की संभावनाओं और अपने स्वामी के केशों की रजत-फलक पर। कभी उसको लेकर अपने अपरूप अदृष्ट पर। यहां तक कि उनकी आंखों के निचले प्रान्त में जो कालिमा छाकर रह गई है, मुख पर जो झुर्रियां झलकती हैं, उनपर भी उसकी दृष्टि चली गई; यद्यपि वह अब तक पचासों बार इसी प्रकार उसपर जाती-आती रही है।

कमलेश विमूढ़ है।······बाबू ने बुलाया था; लिखा था—कई ऐसे आवश्यक काम हैं, जो तुम्हारे बिना अटके हुए हैं। अब उनको पूरा करने का समय आ गया है। इस छुट्टी में तुम सीधे घर ही आना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में रहूंगा।

'उनका कौन-सा ऐसा काम है जो मेरे बिना अधूरा पड़ा है? तो

भी उसकी कल्पना हो सकती है। इसीलिए मैंने पत्र में और तो सभी बातों का उत्तर दिया, एक इसी बात को साफ पी गया !'

वह इस झंझट में पड़ना नहीं चाहता। वह वैसा काम-काजी मनुष्य बनना नहीं चाहता। अभावों की गोद में पड़ी हुई मानवात्मा का सारा उल्लास, उसका अखिल उत्कर्ष, कहां जाकर टिकेगा ! ना, उसको ऐसा संसार बनाना स्वीकार नहीं है। रेल की इसी लाइन पर एक स्टेशन पड़ता है, जहां···जहां···ना, वह वहां नहीं उतरेगा।

कभी उठ बैठता, कभी वही उपनिषद् उठा लेता और कभी टाइम-टेबिल देखने लगता।

अब उसके सिर में दर्द हो रहा था। शरीर-भर में थकान जान पड़ती थी। आंखें किरकिरा रही थीं और मन इतना बेचैन था कि अन्त में विवश होकर वह लेट गया। लेकिन जब नींद न आई, तो वह फिर उठकर बैठ गया।

अब ट्रेन की गति मन्द पड़ने लगी थी। इतने में सहयात्री ने कह दिया, "लो, हाथरस आ गया। कुछ खाओगी ?"

"ना।"

"चाय ?"

"ऊं-ऊं। चाय तो पीनी पड़ेगी !"

कमलेश के जी में आया, 'इस नारी का यह ऊं-ऊं करना भी प्यार करने का निमन्त्रण देना है।'

दूसरी स्त्री उठ बैठी। दो तश्तरियों में उसने नमकीन काजू लगा दिए।

इसी समय गाड़ी खड़ी हो गई। और 'चाय गर्यम्' की आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं।

सहयात्री बोला, "तीन कप निकाल लो।" तभी बाबूजी ने चाय-वाले लड़के को तीन कप चाय लाने का आदेश दे दिया।

कुछ ही मिनटों में जब चायवाला चाय ले आया तो नौकरानी ने

उन प्यालों को उसके आगे बढ़ा दिया। तब कमलेश ने चायवाले से पूछा, "क्यों जी, तुम इस वक्त अंडे दे सकते हो ?"

उसकी इस बात पर युवती एकाएक हंस पड़ी और उसके स्वामी भी मुस्कराने लगे।

"अंडे तो·······?" चायवाले ने चौंकते हुए उत्तर दिया। फिर वह कुछ सोचने लगा और आप ही आप बोला, "अच्छा, देखता हूं।" फिर वह चला गया।

अब कमलेश ने सहयात्री से पूछा, "आप अंडे लेंगे न ?"

गम्भीर होकर सहयात्री बोला, "नहीं।"

कमलेश ने सोचा, 'वह इसी प्रकार का प्रस्ताव युवती से भी करे तो···?' किन्तु फिर उसके मन में आया, 'सम्भव है, उसको मेरा ऐसा आग्रह पसन्द न आए। पसन्द न आने की आशंका भी अपनी ही पराजित भावना है, कौन कह सकता है कि यह नारी मुझे पसन्द नहीं कर सकती ? जैसे यह अनिश्चित है—मगर अनिश्चित भी क्यों ? प्रच्छन्न है—वैसे ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि मेरी कोई बात पसन्द न आने पर भी वह उसे टाल जाएगी ! आदमी में साहस होना चाहिए। फिर मुझे तो यह देखना है कि मैं अपने अस्तित्व को आस्था से ऊपर मनता हूं या नीचे। मैं अपने को जानना चाहता हूं।'

इतने में सहयात्री ने चाय का कप और नमकीन काजूवाली प्लेट कमलेश के आगे बढ़ा दी।

चाय और काजू दोनों वस्तुएं लेते हुए कमलेश से बिना बोले न रहा गया, "मैंने तो आपका आतिथ्य स्वीकार कर लिया, पर आपने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।"

तब तक चायवाला फिर कहीं जाते-जाते बोला, "मैंने कह दिया है। बकरीदी अभी दे जाएगा।"

पर कमलेश ने उत्तर दिया, "मैं भी अब न लूंगा। मना कर देना।"

युवती कुछ मुस्कराने लगी। और सहयात्री बोला, "ऐसा होता है।

क्योंकि हर आदमी कहीं न कहीं दूसरे से बिलकुल अलग होता है ।"

"अपना-अपना मत है । वैसे संयुक्त और विलग कहीं कुछ नहीं है।"

कमलेश की इस बात पर सहयात्री सन्न रह गया । सोचा, 'आदमी समझदार जान पड़ता है ।'

और फिर तीनों चाय की चुस्कियां लेने लगे ।

कमलेश मन ही मन सन्न होकर सोच रहा था, 'मेरी बात पर इस युवती को मुस्कराना ही चाहिए था ।' फिर वह काजू टूंगने लगा ।

तभी सहयात्री ने पूछ दिया, "आप किशमिश लेना पसन्द करें तो निकलवाऊं ।"

कमलेश ने उत्तर दिया, "नहीं, धन्यवाद !"

सहयात्री बोला, "मेरे साथ तो रुचियों का प्रश्न था, इसलिए मैंने इन्कार किया था ।"

इसके बाद वह कुछ कहने जा रहा था कि कमलेश बोल उठा, "तो फिर यही समझ लीजिए कि मेरे इनकार का हाथ ही आपके इनकार के हाथ से मिलकर जुड़ गया है ।"

कमलेश की दृष्टि युवती की झुकी पलकों पर स्थिर थी, जो अब उठ चुकी थी । और आंखों की पुतलियां भी एक बार अपने-आप उसकी दृष्टि से मिल गई थीं !

तब वह सोचने लगा, 'ऐसा हो नहीं सकता कि मेरी बात का प्रभाव न पड़े ।'

उसकी पलकें झुक गईं ।

चाय-पान समाप्त होने पर ज्यों ही चायवाला डब्बे के सामने आया, त्योंही कमलेश ने दो रुपयेवाला नोट देते हुए कह दिया, "चाय आदि का दाम, छः पान और एक पैकेट कैप्सटन सिगरेट ।"

सहयात्री बोला, "यह आपने क्या किया ?"

कमलेश ने उत्तर दिया, "जो मैंने उचित समझा ।"

सहयात्री बोला, "चाय तो मैंने मंगाई थी जनाब ।"

कमलेश बोला, "नमकीन काजू की प्लेट पहले मुझे मिली थी महाशय !"

सहयात्री हंसने लगा। युवती भी अपनी मुस्कान का निरोध न कर सकी।

फिर पान आने पर पहले दो उसने सहयात्री के सामने कर दिए।

सहयात्री बोला, "एक ही लूंगा।"

कमलेश ने उत्तर दिया, "एक नहीं, दो। मगर दो क्यों, चार लीजिए।"

अब रमणी की मुद्रा में मार्दव झलक रहा था।

कमलेश ने बिना और कुछ बोले चारों पान सहयात्री के आगे कर दिए, तो वह इनकार न कर सका। दो पान उसने अपनी पत्नी की ओर बढ़ा दिए।

कमलेश अब पान खाकर सिगरेट सुलगा रहा था और सहयात्री उसे ध्यान से देख रहा था।

युवती ने उसके धूम्रपान के प्रकार को लेकर उसकी इस निर्मुक्त भावना पर दृष्टिक्षेप किया, उस समय उसकी विचार-धारा में एक प्रकार का विकल्प था। वह सोच रही थी, 'विश्व की अनुभूति के सीमाहीन विस्तार में समाज और संस्कारगत बंधनों की क्या स्थिति है ? अनुभव का भूखा मनुष्य सहज ही यह क्यों मान ले कि यह त्याज्य है ? क्या इसीलिए कि अमुक का ऐसा मत है ? या इसलिए कि उसके समाज में इसका प्रचलन नहीं है ? फिर ये प्रचलन और परम्पराएं ?···

बाबूजी सोच रहे थे, 'हम अपने तपोवन में ही मग्न थे। सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग-भाव हमारा रूप था। जीवमात्र के प्रति हममें सद्भाव था, दया थी। लोकोपकार हमारा लक्ष्य था। जीवन को हम क्षणभंगुर मानते थे। दुःख-सुख हमारे लिए समान थे। सारा जगत् हमारा कुटुम्ब था। चरम संतोष और शान्ति की प्राप्ति हमारे जीवन की एकमात्र कामना थी। हम अपने में पूर्ण थे। कहां चले गए हमारे के

विश्वास और आदर्श ? अनुकरण, एकमात्र अनुकरण—न वीरता का, न शक्ति के सृजन का : एकमात्र भोग का संशय और अविश्वासजन्य संस्कारों का, जड़वाद और निरवधि आक्रांति का। आज तो स्थिति यह है कि कोई आदमी विश्वसनीय रह ही नहीं गया।'

कमलेश ने सिगरेट का अंतिम कश लेकर उसको बेंच के नीचे फेंकते हुए जूते के तल्ले से दबा दिया। युवती काजू टूंग रही थी।

तभी उसके स्वामी बोले, "एक निवेदन करूं !" वे सोच रहे थे, 'देखूं क्या जवाब देते हैं।'

कमलेश प्रकृत उल्लास में बोला, "शौक से।"

नौकरानी की ओर दृष्टिक्षेप कर बाबू साहब ने आदेश किया, "एक तश्तरी मेवा तो निकालना।"

कमलेश बोला, "धन्यवाद ! लेकिन आपने देखा ही है, जो कुछ ले चुका हूं, वही कम न था।"

"कुछ भी हो, अब तो इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।" बाबू साहब ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

"अच्छा, यह बात है, तो लाइए।" कहने के साथ ही तश्तरी-भर मेवे उसके सामने आ गए और वह उसका सत्कार करने लगा।

युवती के लिए कमलेश एक अपरिचित व्यक्ति है, जैसे मुक्त अम्बर में एक के लिए दूसरा विहंग। किंतु वह विहंग-वृन्द तो आपस में हंस-बोल लेता है। परंतु सभ्य जगत् का मानव शृंखलित है, पाश-बद्ध। तो भी युवती कभी-कभी कमलेश की ओर दृष्टिक्षेप कर लेती है।

और कमलेश ?

वह कल के लिए कुछ भी छोड़ रखने पर विश्वास नहीं करता। परिस्थिति के अनुसार मोड़ लेकर तत्काल तत्पर हो जाने का वह अभ्यासी है। वह भी युवती को देखता है, किंतु उसका देखना और प्रकार का है। किसीको देखता हुआ भी जब वह उसका मर्म नहीं पाता, तब उसकी प्रच्छन्न भाव-धारा के बीच पहुंचकर वह उसमें मन ही मन तैरने लगता

है। वह अनुभव कर रहा है कि जो प्रकट में इतना मूक है, विकल्प में अवश्य अपहृत होगा।

इसी क्षण अकस्मात् उन चारों नयनों की अभिसंधि हो उठी।

इधर बाबू साहब कमलेश की ओर मुड़कर बोले, "आप दिल्ली में ठहरेंगे किसके यहां ?"

"कुछ ठीक नहीं कहां ठहरूंगा। कुछ मित्र भी हैं, उनके यहां भी ठहर सकता हूं। नहीं तो होटल बने-बनाए हैं।" कमलेश ने सहज भाव से उत्तर दिया।

ट्रेन अलीगढ़ के निकट आ गई थी। कमलेश अब लेट गया था। और उसे नींद आ गई थी। अनेक स्टेशन आए और गए पर कमलेश सोता ही रहा।

जब कभी कमलेश की तन्द्रा घनीभूत हो उठती, तो उसके मानस-पट पर कुछ छायाएं चलती-फिरती जान पड़तीं। अतीत की स्मृतियां परिकल्पनाओं के चलचित्र बन जातीं। उन चित्रों में आज के जीवन की नाना प्रेरणाएं अपने-आप सम्मिलित हो उठतीं। व्यतीत वर्तमान के कंधे से लगकर अपना सिर टिका देता और कभी-कभी उसके गले में बांह डालकर कोई ऐसी बात कहने लगता कि उसकी देह का रोआं-रोआं सिहर उठता। कभी जब वह सोते-सोते चौंक पड़ता तो एकाएक उसके मुंह से कोई वाक्य इतने ज़ोर से निकल पड़ता कि निकट सोनेवालों की नींद टूट जाती। लोग आश्चर्य में पड़कर पूछ उठते, "क्या हुआ कमलेश ?" उत्तर में जब कमलेश कह देता, "कुछ नहीं" तो उसके माता-पिता और भाई सभी चिंतित हो उठते। वृन्दावन भी सोचने लगते, यह स्वप्न में बड़बड़ाता बहुत है। इन स्वप्नों की बड़बड़ाहट कुछ विचित्र प्रकार की होती थी। कभी उनके साथ एक निःश्वास जुड़ा रहता और कभी वाक्य

पूरा होते-होते बीच में कट जाता। कभी एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा। इसी प्रकार देर तक वह कुछ न कुछ बुदबुदाता रहता।

पण्डित वृन्दावन उसकी इस स्थिति पर बड़े चिंतित रहा करते। उसे अपने कमरे में अकेला न सोने देते, जबकि उसकी अवस्था बत्तीस पार कर गई थी। बहुत समय तक वह विवाह को टालता रहा था, इसलिए बकुल का विवाह पहले हो गया था। कभी सम्पूर्ण दिन निकल जाता और कमलेश किसीसे एक शब्द न बोलता। उन आवश्यक कार्यों के संबंध में वह कोई हस्तक्षेप तो न करता, जिनका निवारण सम्भव न होता, किंतु यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसी बात के लिए उससे आग्रह या अनुरोध कर बैठता, जो उसकी रुचि के विपरीत होती, तो वह प्रायः सुनी-अनसुनी कर देता। प्रायः उसका मुख उतरा-उतरा रहता। घर के लोगों को यह पूछने का भी साहस न होता 'क्यों, तबियत तो ठीक है ?' धीरे-धीरे सब लोग जान गए थे कि पूछना बेकार है। उत्तर तो कुछ देगा नहीं, संभव है, उठकर कहीं चल दे।

एक बार ऐसा हुआ कि वह सबके साथ खाना खाने बैठ तो गया, पर फिर दो रोटी खाकर उठ पड़ा। मां का जी न माना। पूछा, "क्या बात है बेटा ?" तो बिना कोई उत्तर दिए आचमन के बाद तौलिये में हाथ पोंछ बदन में बनियान और कमीज़ डालकर वह बैठक में आ गया।

वृन्दावन ने पूछा, "सुनता हूं, आज तुमने खाना नहीं खाया, बड़े !"

सिर ऊपर उठाए बिना उसने उत्तर दिया, "जितनी भूख थी उतना खा लिया।"

उसकी इस बात पर पण्डित वृन्दावन समझ गए कि और जिरह करना बेकार है।

उसके इस रंग-ढंग पर घर में चर्चा तो नित्य चलती, कभी सुमित्रा और वृन्दावन में, कभी बकुल और उसकी नवपत्नी इला में, पर इस समस्या का कोई हल न निकलता।

वृन्दावन जानते थे कि बड़ी बहू हमारे घर जितने दिन रही, लेन-

देन की बातों को लेकर वह हमारे उपहास और आलोचना-भरे कटु वचन ही सुनती रही ; उसने हमारे घर में उचित सम्मान कभी नहीं पाया, यद्यपि वह निर्दोष थी।

वे यह भी सोचते थे कि अपनी शालीनता और हंसमुख प्रकृति के कारण चार-छः दिन में ही उसने सम्पूर्ण घर को प्रभावित कर लिया था। यहां तक कि मेरी पत्नी सुमित्रा भी यह मानने लगी थी कि समधी ने दहेज में तो विशेष कुछ नहीं किया, पर बहू हमारी वास्तव में सोने की परी है। फिर कौन जानता था कि उसको इस घर में दुबारा आने का अवसर ही न मिलेगा !

बकुल और इला की प्रतिक्रिया दूसरे प्रकार की थी। बकुल का कहना था कि भाभी मरतीं नहीं, अगर हमारे यहां उनका उचित आदर होता। क्या हम लोग इस बात को कभी भूल सकते हैं कि अम्मा ने मेहमानों से भरे घर में उसके यहां से आए हंडे में पानी भरकर उसके रसियाने का प्रदर्शन करते हुए कहा था, "चौथी चलाने के लिए आने दो नरेश को। मैं उससे कहूंगी, तुम्हारे बाप को अपनी लाड़ली के ब्याह में देने को यह पुराना हंडा ही जुटा था।"

भाभी से उस दिन खाना नहीं खाया गया था। बड़ी देर तक वे रोती रही थीं।

इला का कहना था कि अम्मा को वह हंडा वापस नहीं करना था ! जबकि जीजी का कहना था कि वह भूल से चला आया है। देने के लिए नया हंडा मंगाया गया है। वह इससे बड़ा भी है। लेकिन भीतर ही भीतर इला यह स्वीकार करने लगी थी कि जीजी अगर मर न जातीं, तो उनका यहां बड़ा मान होता। स्वभाव की मृदुलता में तो मैं उन्हें पा न सकती थी। सेवा और टहल का काम भी मुझसे सधता नहीं। उनके आगे मेरा कौन मान रखता। सन्निहित स्वार्थों के संघर्ष की इस भाव-भूमि पर इला सोचने लगती थी, 'उहं ! जो हुआ सो हुआ, अब दद्दा को वे सब बातें भूल जानी चाहिए ! चला गया सो चला गया। नित्य

उसीका रोना, उसीकी बातों की याद करना, उदास-उदास रहकर सारे घर में मनहूसियत फैलाना तो ठीक नहीं। यह बड़ा अशुभ होता है ! दद्दा की उपस्थिति में कभी-कभी तो ऐसा सन्नाटा छा जाता है, जैसे घर में कोई बहुत बीमार हो या आज ही किसीकी मृत्यु हो गई हो !'

त्यौहार के दिन जब खाना विशेष रूप से उत्तम कोटि का बनता, तब तो कमलेश जान-बूझकर भूखा उठ जाता। घर में उसके कई छोटे भाई-बहिनें थीं। उनका ध्यान रखकर मां और छोटी बहू को पक्वान्न बनाने ही पड़ते। बाज़ार से मिठाइयां भी आतीं। दूध, दही, रबड़ी आदि वस्तुएं भी मंगाई जातीं; लेकिन उसके आगे की कटोरियां ज्यों की त्यों पड़ी रहतीं। साग से एक-आध पूरी खा लेता और ऊपर से एक गिलास पानी पीकर उठ जाता। मिठाइयां और रबड़ी खाना दूर रहा, चखता भी न था ! माता-पिता, अनुज, बहू सबको उसका यह व्यवहार बहुत खलता; लेकिन कोई उससे इस विषय में कुछ कह न सकता, पूछ न सकता। जब वह घर में उपस्थित न रहता, तब वहां कभी कान्ति गेंद खेलता, कभी तारा मोटर चलाती, चांदनी कुत्ते का कान पकड़कर उसे घसीटने लगती। गेंद तारा के सिर में लग जाता, या तारा की ट्रेन का एंजिन ही गेंद से टकरा जाता। कभी चांदनी का कुत्ता गुर्राना शुरू कर देता, तारा डरकर रोती-रोती इला की टांगों से लिपट जाती। चांदनी के पेट में डब्बू के पंजे का खरोंचा लग जाता और दौड़ता हुआ कान्ति गीले फर्श पर रपटकर गिर पड़ता, तो एकदम से इतनी चिल्ल-पों मचती कि वृन्दावन का संध्या-पूजन भंग हो जाता। कभी-कभी बड़ा गुल-गपाड़ा भी मचता, लेकिन कमलेश के आते ही एकाएक सबकी बोलती बन्द हो जाती। बातें भी होतीं तो बहुत धीरे-धीरे। हंसना और ज़ोर-ज़ोर से बात करना तो बिलकुल समाप्त हो जाता।

उसके इस रंग-ढंग के प्रति सुमित्रा और वृन्दावन अक्सर एकान्त में बैठकर विचार-विमर्श किया करते।

"एक आदमी की उदासी और सनक के लिए सारे घर की यह मन-

हूसियत मुझसे सही नहीं जाती।"

सुमित्रा की इस बात पर एक दिन वृन्दावन ने उत्तर दिया, "तो अब ऐसा करो कि बड़े से साफ-साफ कह दो कि रहना हो तो ठीक ढंग से रहे, नहीं तो घर से अलग हो जाए।"

एक कृत्रिम घबराहट के साथ सुमित्रा ने उत्तर दिया, "हाय, यह तुम क्या कह रहे हो कमल के बाबू ?"

"मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूं। एक आदमी की शान्ति के लिए हम सारे घर की खुशियों का गला घोंटते रहें, ऐसा नहीं हो सकता !"

सुमित्रा को वे सब घड़ियां याद हो आईं, जब बड़ी बहू ने घर में प्रवेश किया था। उसका शील-संकोच-भरा स्वभाव, मानापमान से परे रहकर किसी भी कठोर या उपहासपूर्ण बात को हंसकर टाल देने की प्रवृत्ति अपने सम्पूर्ण चित्रात्मक रूप में उसे स्मरण हो आई।

—छोटी बहू उस दिन बतला रही थी। उसने कहा था, "उहं ! उनके कहने का मैं बुरा नहीं मानती। बप्पा को चारों ओर देखकर चलना चाहिए था। बिना बतलाए कौन समझ सकता है कि यह उनका काम नहीं, नाते-रिश्तेवाले लोगों ने ही यह गड़बड़ की है।"

"अरे तो क्या हुआ। मैं खुद नरेश भैया से कह दूंगी, हंडा वापस ले जाओ। कोई आए-जाए, तो वह नयावाला उसके हाथ भेज देना। बप्पा को अपनी असावधानी का कुछ पता तो लगे।"

आदमी को स्मरण सभी बातें आती हैं। मगर तब जब कहनेवाला दृष्टिपथ से विलग हो जाता है। एक दिन उसे स्मरण हो आया—धोतियों और साड़ियों को देखकर मेहमान स्त्री-पुरुषों से भरे आंगन में जब मैंने कह दिया कि ऐसी धोतियां तो हमारे यहां कमीन और पर्जाजनों को दी जाती हैं। तो उसने हंसते-हंसते उत्तर दिया था, "बप्पा ने कोशिश तो बहुत की अम्मा, मगर तुम जानती हो कंट्रोल का ज़माना ठहरा, जैसा मिला वैसा ले आए !...हाय फिर उन्हीं धोतियों और साड़ियों में से मेरी ननद और बिटिया की जेठानी ने बड़ी खुशी से कुछ न कुछ छांट ही लीं।"

भावुकता में सुमित्रा की आंखें डबडबा आतीं। अपना ही कथन पश्चात्ताप के आंसू बनकर फूट पड़ता। मगर थोड़ी देर बाद उसके मन में आता, 'बहू के लिए जो हार बनवाया था उसे अब मैं ले लूंगी। बड़े का दूसरा ब्याह तो जल्दी होने से रहा।' फिर थोड़ी ही देर में विचार बदल जाता 'नहीं, ऐसा कुछ मुझे नहीं सोचना चाहिए।'

प्रकट में सुमित्रा बोली, "पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है, चाहे वह कोई हो। देवी-देवता भोगते हैं, हम तो आदमी हैं। फिर हर चीज की एक हद होती है। कैसा भी दुःख हो, कभी न कभी तो शांत होगा। जिंदगी सबको प्यारी होती है।"

अब वृन्दावन के मुंह से निकल गया, "ये सब पापड़ तुम्हारे ही बेले हुए हैं रानी। छोटी-मोटी त्रुटियों और खामियों को तुम पचा नहीं सकती थीं! आज जिन करतूतों के लिए तुम रोने बैठ जाती हो, उस समय उन-पर रोक-थाम नहीं रख सकती थीं।"

बात सही थी, लेकिन सुमित्रा स्वीकार तो कर नहीं सकती थी। चूने पर कत्थे की धार चढ़ाते हुए उसने कह दिया, "कैसे रख सकती थी भला! कौन जानता था कि बहू इतनी जल्दी इस दुनिया से उठ जाएगी!"

उत्तर के अन्तिम शब्दों पर पहुंचते-पहुंचते सुमित्रा फिर उदास हो उठी।

पण्डित वृन्दावन सोचने लगे, 'मनुष्य का उचित मूल्यांकन तभी होता है, जब मृत्यु उसे हमारे बीच से उठा ले जाती है।' तभी उन्होंने कह दिया, "बड़ी बहू अगर बनी होती तो लेन-देन के सम्बन्ध में तुम्हारा यह लोभ, मोह और क्षोभ आज भी समाप्त न होता।"

स्वामी को पान देकर, स्वयं भी पान खाकर सुमित्रा ने कह दिया, "अरे हटो, मैं कहती हूं न होता समाप्त तो क्या बुरा होता! अपनी धन-सम्पदा किसे प्यारी नहीं होती? बड़े ज्ञानी बनते हो, तुमसे इतना भी नहीं हुआ कि कहीं उसके ब्याह का सिलसिला ही जमाते।"

"हां, सिलसिला जमाते तुम्हारी इस जीभ से, जो कतरनी की तरह चलती है !"

सुमित्रा के होंठ फड़क उठे और नथुने फूल गए। ताव खाकर अंगुलि-निर्देशन के साथ वह बोली, "बस कमल के बाबू, तुम्हें बुरी कसम है, कभी मुझसे बोलना नहीं।"

"तुम भी अपनी यह मनहूस शकल मुझको कभी दिखलाना नहीं।" कहते-कहते वृन्दावन थोड़ा रुके और बोले, "मेरे दिल में तो छाले पड़ गए हैं, और तुम मुझसे बड़े की शिकायत करती हो ! रात-दिन समधियाने की शिकायत करके बहू को जप लिया। अब बड़े के पीछे पड़ी हो !"

इस वाक्युद्ध का परिणाम यह हुआ कि उस दिन दोनों ने खाना नहीं खाया। सायंकाल छोटी बहू ने खाना बनाया और कमलेश अपने पिता को खाने के लिए साथ लिवा लाया।

घर के रंग-ढंग जानते उसे कभी देर न लगती थी। भोजन के समय घी परोसने सुमित्रा स्वयं आया करती थी। दुधांड़ी के पास जाकर कटोरों में दूध वही डालती थी। कमलेश जो पिता के साथ भोजन करने बैठता, तो बकुल और कान्ति को अपने पास अवश्य बैठा लेता। ऐसे समय इला रसोईघर में रहती और दूध-घी परोसने के लिए छोटी बहिन आत्मा को आना पड़ता।

इन प्रसंगों के इतिहास से वह अब तक काफी परिचित हो चुका था। तभी सहसा उसके मन में आ जाता, 'ज़रूर कहीं कुछ दाल में काला है।' फलतः भोजन के पश्चात् वह तुरन्त मां के पास पहुंच जाता। अगर वे बैठी मिलतीं, तो उसका प्रश्न होता, "कुछ तबियत खराब है क्या अम्मा ?"

सुमित्रा को विदित था कि कमलेश दूसरे को दुखी देखकर अपना दुःख भूल जाता है। सदा जानती रहती थी कि बड़ा ज़रूर आएगा, उसकी तबियत का हाल पूछने। अतः वह इस अवसर के लिए पहले से ही तैयार रहती।

झट साड़ी के अंचल को आंखों से लगाकर गीले कण्ठ से उसने कह दिया, "मेरी तबियत अब क्या खराब होगी बेटा। जिसे जाना था वह तो चला ही गया !"

उसका इतना ही कहना कमलेश के लिए यथेष्ट हो गया। तब वह उत्तर में कुछ हंसने की चेष्टा करता हुआ बोला, "चला गया तो अब हम क्या करें उसके लिए ! हमेशा इसकी याद कर-करके रोने और विलाप करते रहने से वह लौट तो आएगा नहीं। और मान लो भीड़-भाड़ के कारण उसकी यहां बहुत आव-भगत न भी हो पाई हो, पर इसीलिए क्या उसे मर जाना चाहिए था ? आज के ज़माने में मनुष्य मोम का पुतला बनकर कितने दिन टिक सकता है ?"

"हां, यह तो तुम ठीक कहते हो बेटा।" सिर हिलाते हुए सुमित्रा ने कह दिया।

तभी कमलेश ने प्रस्ताव कर दिया, "तो उठो, खाना खाओ। भोजन करते समय तुम्हारा परोसा दूध जब तक मुझे नहीं मिलता, तुम जानती हो, तब तक मेरी तृप्ति नहीं होती।"

कमलेश के इन शब्दों को सुनकर सुमित्रा का सारा क्षोभ दूर हो गया और रात के नौ बजते-बजते वह पान लगाने बैठ गई।

वृन्दावन सोते समय दूध पीने के बाद दो पान ज़रूर खाते थे। सुमित्रा मुस्कराते हुए जा पहुंची।

पत्नी के हाथ से पान लेते-लेते वृन्दावन एक तेवर के साथ बोल उठे, "तुम्हारी उस कसम का क्या हुआ कमल की मां ?"

सुमित्रा मुस्कान दबाती हुई संभल गई और बोली, "चुपचाप पान ले लो, मेरी ओर मत देखो।"

वृन्दावन पण्डित वार्तालाप में सिद्ध पुरुष थे। कहते हैं, स्नेह-वार्ता करते समय उनकी वाणी में मिश्री की डली घुलने लगती। बहस करते तो ऐसी नपी-तुली और काट-छांट की बात करते कि लोग दंग हो जाते। पर कभी जो आवेश में आ जाते, तो ऐसी कठोर बात कह देते, जो बरछी

की भांति घुसती चली जाती, आर-पार हुए बिना न मानती । सुमित्रा की शब्दावली के साथ उसकी स्नेहसिक्त भाव-भंगिमा में एक तिरछी चितवन देखकर उन्होंने कह दिया, "उत्तेजना में आकर जो उत्तर दिए जाते हैं। तुम्हें मालूम होना चाहिए, वे कभी अन्तस् से नहीं निकलते । और स्वाभाविक भी नहीं होते । इसलिए तुमको मेरी बात का बुरा नहीं मानना चाहिए।"

सुमित्रा की आंखों में आंसू आ गए। बोली, "कमल के बाबू, मुझे खुद नहीं मालूम था कि बड़ी बहू हृदय की इतनी ही कोमल होगी। आजकल मुझे जब कभी उन बातों का खयाल हो आता है, तो मैं भी यही सोचने लगती हूं कि उसकी जगह अगर मैं होती, तो शायद मैं भी अपने प्राण खो देती।"

"इसीलिए तुम्हें समझ-सोचकर बात करनी चाहिए। तुम्हें पता होना चाहिए कि आम कब पकता है, महुआ कब गदराता है। सभी फल अपनी ऋतु पर पकते हैं। सभी कामों के लिए एक अवसर होता है। बड़े के हृदय का घाव तक तो अभी भरा नहीं, ब्याह की चर्चा शुरू कर दूं। तुम मुझे जानवर समझती हो ! पर कोई जानवर भी मौसम आए बिना रस्सी नहीं तुड़ाता।"

"तुम चाहे जो कहो, मैं तो सदा यही सोचती हूं कि जब तक उसका ब्याह न होगा तब तक उसके मन का घाव नहीं भरेगा। तुम देखते नहीं हो, पहले से कितना दुबला हो गया है !"

"सब देख रहा हूं। आजकल तो छुट्टियां चल रही हैं। इसके बाद कालेज खुलते ही जब व्यस्त हो जाएगा, तब अपने-आप ढंग पर आ जाएगा।"

"देखो, आ जाए ढंग पर, तब तो बहुत ही अच्छा है।"

इस प्रकार का गृह-कलह वृन्दावन के घर प्रायः चलता रहता। एक कमलेश ऐसा था, जो युक्ति से काम लेकर उनकी ग्रन्थि सुलझा देता था।

कमलेश जब घर पर रहता, तब सदा अतीत के चित्र उसके सामने चलते-फिरते दिखलाई पड़ते—यहीं पर लवंग ठिठककर खड़ी हो गई थी। घूंघट की ओट से उसने मेरी ओर देखा था। शायद वह मुझसे कुछ कहना चाहती थी। हो सकता है उसने सोचा हो, 'इन्हींसे एक बार क्यों न पूछकर देखूं ! घर-भर को मुझसे शिकायत है। अब तुम अपनी कहो।' या यह भी हो सकता है, उसकी दृष्टि में कोई मांग रही हो। वह कहना चाहती हो, 'यहां आओ। मुझे तुमसे कुछ कहना है।' पर मैं अभी खड़ा भी न हो पाया था कि मां आकर झट कहने लगी थीं, 'अरे तुम अभी नहाए नहीं !' मैंने कह दिया था, 'अभी जाता हूं।' मां चली गई थीं। तब तक लवंग ने किवाड़ बन्द कर लिए थे।

वह जब नहाने जाता, तब उसको उसी दृष्टि का ध्यान हो आता। —कजरारी आंखों की उस अर्थ-भरी चितवन में अवश्य ही कोई अन्तः-सत्ता-सम्बन्धी प्रश्न निहित रहा होगा ! उच्छ्वास-भरी मनःस्थिति में शरीर पर मदिर गन्धमय साबुन मलने की तबियत नहीं होती। फिर वह यह भी सोचने लगा, 'अगर मैं नहा चुका होता, तो मां को इसी निमित्त, ठीक उसी समय, कहने की आवश्यकता ही क्यों पड़ती, जब मैं क्षण-भर के उस मादक मिलन में युग-युग की प्यासी आत्मा का मधुपान कर रहा था।'

कई दिन से स्नान-समय उसने केशों में तेल का प्रयोग नहीं किया था। न तो दर्पण में अपने को देखने की इच्छा हुई थी, न दाढ़ी बनाने की। उसके इस आलस्य पर संदीप ने कहा था, 'ऐसा ही है तो तुम दाढ़ी क्यों नहीं रखा लेते। पांच वर्षों में इतनी बढ़ जाएगी कि रास्ते चलते लोग यह देखकर सामने से हट जाया करेंगे कि बाबा आ गए। कोई यह भी कह उठेगा—हटो, हटो ! देखते नहीं, कौन आ रहा है ?'

संदीप की इस बात पर पहले वह मुस्कराने लगा था। साथ ही उसका हाथ दाढ़ी पर जा पहुंचा था।

इस सिलसिले में संदीप ने और भी दो-चार जुमले कस दिए थे, 'आंख उठाकर चलो मियां, नहीं तो किसी दिन चपेट खाकर बीच सड़क मुंह के बल गिरोगे। कोई दौड़कर उठाने नहीं आएगा। तुम्हें खुद ही जल्दी से उठकर कपड़े झाड़कर, चल देना पड़ेगा। इधर-उधर कोई यह भी न पूछेगा—कहीं चोट तो नहीं आई बाबू साहब।'

कमलेश सब चुपचाप सुनता रहा था और संदीप ने जैसे तप कर लिया था कि उसे जो कुछ कहना है वह आज ही कह डालेगा। 'तुम्हारी अभी उमर ही क्या है ? फिर तुमने उसका ऐसा कुछ सुख भी नहीं प्राप्त किया जिसका प्रभाव तुम्हारे लिए चिन्तन का विषय बन सकता।'

कमलेश के मन पर अब तक किसी बात का प्रभाव न पड़ा था। क्योंकि संदीप की बातों में सहसा उसे अवगुण्ठन की छाया में लवंग का वही मुख दिखलाई पड़ जाता, जो कपाट की ओट से उससे कुछ कहना चाहता था। उसी मुख के साथ उसे उस रात का भी स्मरण हो आया, जब उसकी भाभी (उसके मामा के ज्येष्ठ पुत्र रज्जन दद्दा की पत्नी) उसे जगाकर उठा लाई थीं। महिलाओं की गीत-सभा अब उठ गई थी। नींद-भरी आंखों में वह जब उनके साथ चुपचाप चल दिया, तभी उन्होंने कहा था—आज तुमको वहां नहीं, यहां सोना है लला, इस कमरे में।

वह कमरा उसके लिए नया नहीं था। पहले भी अनेक बार वह उसमें सो चुका था, लेकिन उस दिन उसका फर्श गाय के गोबर से लीपा गया था। पलंग पर एक रंगीन चादर बिछी हुई थी। तकिये दो थे, जो चादर के ही रंग के थे। खूंटी पर एक लालटेन टंगी हुई थी। उसका शीशा बिलकुल साफ था। उसके पास ही दीवार में एक अन्तर्मुखी खिड़की थी, जिसमें मिठाइयों से भरी एक तश्तरी, गरम दूध से भरा कटोरी से ढका एक गिलास तथा बरगद के पत्ते पर गुलाब के पुष्पों की माला रखी थी। पास ही धूपदानी में खुंसी हुई अगरबत्तियां सुलग रही थीं। कमरा सुगंध से महक रहा था। उस समय कमलेश को सब कुछ एक रंगीन स्वप्न-सा

लग रहा था ।

भाभी जब उसे अन्दर ले आईं, तो लालटेन की मन्द बत्ती थोड़ा ऊपर उचकाती और मुस्कराती हुई बोलीं, 'आज का दिन जीवन में कभी नहीं भूलता लला । और अधिक मैं क्या कहूं, तुम खुद समझदार हो ।

अब तक यों भी वह बहुत कुछ समझ गया था । अतएव उस क्षण भाभी के सामने वह ऐसा विनत हो उठा था कि कोई भी उत्तर उससे बन नहीं पड़ा था ।

इतने में संदीप बोल उठा, 'रही दुःख की बात, सो सबको होता है । लेकिन हरएक चीज़ की एक सीमा होती है । और मैं स्पष्ट देख रहा हूं, तुम सीमा लांघ रहे हो । सच पूछो तो तुमको लवंग का ध्यान ही अपने मन से हटा देना चाहिए ।'

संदीप की इस बात के उत्तर में तो उसने कुछ नहीं कहा । लेकिन इस वार से वह एकाएक रो पड़ा था । बड़ी देर तक वह सिसकियां ले-लेकर रोया था ।

बाहर से आंसू टपकते जाते और भीतर उस रात की बातों के माध्यम से कोई कहने लगता, 'संसार की यही गति है । सब लोग भूल जाते हैं, एक दिन तुम भी भूल जाओगे ।'

संदीप ने जब बहुत समझाया, तब अन्त में उसने इतना ही कहा था, 'तुम नहीं जानते संदीप, मुझपर क्या बीत रही है ।' इसके बाद वह चुप हो गया था । हालांकि वह कहना चाहता था—मेरे भीतर छुरियां चल रही हैं और तुम मुझे उपदेश दे रहे हो ! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि आज मानवता नाम की चीज़ हमारे समाज में रह ही कहां गई है ? पावन आत्मीयता, स्नेह और ममत्व के सारे बन्धन टूट गए हैं। जितने दिन वह हमारे घर रही, सदा उपहास, व्यंग्य और दुर्वचन ही सुनती रही ।

थोड़ी देर बाद जब वह कुछ स्थिर हुआ तो बोला, 'जाने क्या बात है, कोई बार-बार मेरे कानों में कहने लगता है—मृत्यु स्वयं उसके पास

आई नहीं थी। उसीने उसका आह्वान किया था।'

'कोई नई बात नहीं कह रहे हो।' संदीप ने घड़ी देखते हुए कहा, 'समाज की भर्त्सना व्यक्ति को सदा सुननी और सहनी पड़ती है।'

'तुम जिसे भर्त्सना-मात्र कहकर छुट्टी पा लेना चाहते हो, मैं उसे मनुष्य का मनुष्य के प्रति अत्याचार समझता हूं। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि नरेश अभी चार दिन पूर्व आया था। उसका कहना था कि लवंग के ब्याह में बप्पा को अपना एक बाग बेच देना पड़ा था! इधर मां का कहना था कि सब करतूत देख ली।—पलंग न जाने कब का ठपेल दिया! हण्डा इतना पुराना कि अभी से रसियाता है। बैठक के लिए रेडियो देना दूर रहा, कुरसी-मेज़ तक तो देते नहीं बनी!....और यह तो तुमको मालूम ही है कि छोटी बहिन आत्मा के ब्याह के लिए रुपये जुटाने के प्रश्न पर ही मुझे पढ़ना छोड़कर नौकरी करनी पड़ी।'

'तो क्या हुआ! सम्मिलित कुटुम्बों में सदा ऐसा हुआ है और आज भी ऐसा होता रहता है।'

'सदा लड़कों के ब्याह में झगड़ा कर-करके बहू को मर जाने पर विवश कर दिया जाता है और अपनी लड़की, अधिक सयानी हो जाने मर मजबूर होकर, अन्त में भाड़ में झोंक दी जाती है! आत्मा का विवाह जिस व्यक्ति के साथ किया गया है, वह एक मिल में बिनता का काम करता है!'

'भई, प्रथम विवाह की सन्तान के साथ ऐसा व्यवहार अक्सर होता है। यह कोई नई बात नहीं है। ऐसा ही है तो तुम घर से अलग क्यों नहीं हो जाते?'

'संदीप, तुम तो जानते हो, मैं समन्वय का पक्षपाती हूं।'

'मरा समन्वय! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि समन्वय एक प्रकार की लीपा-पोती है, जिसमें ऊपर से सब कुछ स्वस्थ और प्रकृत जान पड़ता है, भीतर सड़ांध की दुर्गन्ध और पीब भरी रहती है, यहां तक कि कीड़े बजबजाते रहते हैं। बड़ा अच्छा हुआ कि तुम्हारी बहिन का ब्याह हो

गया, भले ही श्रमिक के साथ हुआ हो ! मेरे आफिस में तो एक ऐसी महिला स्टेनो-टाइपिस्ट नियुक्त की गई है, जिसे उसके पति ने त्याग दिया है। कहते हैं, ब्याह हो जाने के बाद भी वह अपने पूर्वप्रेमियों से सम्बन्ध बनाए हुए थी ! तुम्हारी बहिन के साथ ऐसा व्यवहार होने की कोई सम्भावना तो नहीं है ! यह ठीक है कि आधुनिक सभ्यता का सुख भोगने में वह पीछे रहेगी ; पर यह भी उतना ही सही है कि आधुनिक सभ्यता के कई ऐसे रोगों और अभिशापों से निश्चित रूप से वह सुरक्षित रहेगी, जिन्होंने जीवन को अत्यन्त दयनीय अथवा घृणित बना डाला है !'

कमलेश को ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके चारों ओर जो मकान हैं, उन सबमें भीतर ही भीतर आग सुलग रही है, धुआं उठ रहा है, लौ की लपटें फूटने ही वाली हैं। फिर एक लपट के साथ उसे अनेक चिताएं जलती हुई दिखाई देने लगीं। फिर उसकी परिकल्पना में वही चिता रह गई, जो लवंग की थी।···जमना के उस तट पर जब धरती में एक गड्ढा बनाकर उसमें लक्कड़ रख दिए गए थे तब श्वसुर और चचिया ससुर, साले तथा ममियां ससुर ने अर्थी से उठाकर लवंग को जमना-जल से नहलाया था। कमलेश भी इस प्रक्रिया में हाथ बटाने के लिए आगे बढ़ा था लेकिन तभी आचार्य रामावतार चतुर्वेदी सहसा बोल उठे थे, 'न बेटा, तुम्हारी ज़रूरत अभी नहीं आई।' पर फिर जब उसे चिता पर रख दिया गया, तब उसके मुंह पर घी का लेप करने के लिए उसीको आगे बढ़ना पड़ा था। दिन के उज्ज्वल आलोक में पहली बार उसने लबंग का मुख देखा था ! मांग में सेंदुर, कुन्तल-राशि में पिन, कलाइयों में सुनहरी चूड़ियां, पैरों में महावर—सब यथाविधि था—और वह मुख ! ना, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। लेकिन उसीमें उसने आग लगाई थी।

फिर वही मुख जैसे उससे कहने लगा हो, उसी अवगुण्ठन के भीतर —उसी कपाट की ओट से, 'मुझे तुमसे कुछ कहना है !' और संदीप का कहना है—'रोना एक कमज़ोरी है।'

२

दिल्ली-शाहदरा स्टेशन पार करने के बाद बाबू साहब अपनी नव-पत्नी की ओर उन्मुख होकर धीरे से बोले, "विचित्र व्यक्ति है। रात-भर जगा तो जगता ही रहा। चाय पीने बैठा तो साथ में चीज़ें इतनी खा गया ? अब सो रहा है तो समय पर उठेगा इसमें भी संदेह है।"

लीला प्रायः कम बोलती है। पचास बातें जब उसके मन को मथ डालती हैं, तब वह उनमें से दो-एक को बाहर फूटने देती है। संशयापन्न स्थिति में कुछ कहना या स्थिर कर लेना उसे स्वीकार नहीं होता। अभी तो वह उसे देख ही रही है। एक शब्द भी उससे कहने-सुनने का संयोग उसको नहीं मिला। जीवन की अनन्त चिंता-धाराएं ठहरीं। कोई क्या सोचता और करता है, किस संसार में है, किस उलझन में लीन है, उसके निजत्व में आए बिना कोई कैसे जान सकता है ?

लीला धीरे से बोली, "दुनिया ठहरी, किसको-किसको देखा जाए ?"

अपेक्षाकृत इस तटस्थ-असंलग्न स्वर के साथ उसके विलोड़ित अन्तः-करण की कैसी संगति बैठती है, कौन जाने ? कम से कम बाबू साहब तो उसकी थाह न पा सके। किंतु उसी क्षण अंगड़ाई लेते हुए कमलेश ने जो आंखें खोल दीं और उनमें किसीकी उद्वेलित दृष्टि की जो झलक आ पड़ी, उससे यह स्पष्ट हो गया कि इस बहिरभिमुखी प्रसंग में कितनी अन्तर्ध्वनि है, कितनी असंगति और कितना वाक्छल।

कमलेश झट से उठकर बैठ गया। फिर एक बार इधर-उधर देखकर बैंडिंग संभालने लगा।



बाबू साहब बोले, "आप सोते भी खूब हैं। लगता है जैसे सोते हुए भी जागते रहते हों। मैं कभी सोच ही नहीं सकता कि आपकी भांति आदमी [illegible] जग सकता है।"

कमलेश ने कुछ मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "रवीन्द्रबाबू ने कहा है, 'सोचता हूं, यह एक स्वप्न है, जिसमें बहुतेरी वस्तुएं इतनी बिखरी हुई हैं कि उन्हें देखकर व्याकुल हो उठता हूं। एक दिन आएगा, जब मैं जागते हुए उन वस्तुओं को तुझमें एकत्र पाऊंगा और तभी मैं सदा के लिए मुक्त हो जाऊंगा।' "

उसकी इस बात पर बाबू साहब ठगे-से रह गए। लीला भी स्तब्ध हो उठी। तब एकाएक उनके मुंह से निकल गया, "वाह! यह तो गीतांजलि का कोई गीत मालूम पड़ता है। और आपको याद भी खूब आ गया।" इतना कहकर बिस्तर समेटते हुए उन्होंने अन्त में कह दिया, "इस कथन को तो नोट करना होगा।"

कमलेश ने सहज भाव से उत्तर दिया, "क्या-क्या नोट कीजिएगा? फिर नोट-बुक में नोट कर लेने से क्या होता है?"

बाबू साहब इतने प्रभावित हो उठे कि एक बार तो उसे एकटक देखते रह गए।

लीला उस समय एक ओर हटकर अपनी साड़ी संभालने में लगी थी।

अब उस डब्बे में बैठे सभी लोग उठ खड़े हुए।

ट्रेन दिल्ली स्टेशन के प्लेटफार्म पर थी। बाबू साहब कुली के सिर पर असबाब लदवाकर आगे-आगे चले, फिर लीला, फिर नौकरानी। किंतु इसी क्षण लीला प्लेटफार्म से लौटकर डब्बे में आकर कोई वस्तु खोजने लगी। लौटते हुए किसीसे उसने कुछ कहा नहीं। बटुआ खाली हो गया था। सावधानी के साथ उसने एक बार इधर-उधर नीचे-ऊपर देखा। किंतु कहीं भी उसे इच्छित वस्तु न मिली। 'उंह, कहीं गिर गया होगा।' बड़बड़ाती हुई वह झट से लौट पड़ी। तेजी के साथ वह आगे बढ़ ही रही थी कि उसी क्षण कमलेश ने निकट होते कह दिया,

"लीजिए, आपका रूमाल यह रहा। मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। मालूम नहीं, किस तरह जेब में आ गया।"

बाबू साहब थोड़ा आगे बढ़ गए थे। समझते थे, लीला पीछे-पीछे आ रही है। भीड़ भी कम न थी। नौकरानी मन्थर गति में चल रही थी। उसे अपने इधर-उधर देखने का कोई ध्यान न था।

लीला उस समय अवसन्न हो उठी। तरंगित प्रेरणाओं के झकोर में, अपनी आस्था की आरसी पर, उसने कितनी बार उसे पाया और कितनी बार विकल्प में उत्क्षेप किया, कौन जाने? क्षण-भर वह स्थिर होकर उसे देखती रही। फिर जैसे विलोल लिप्सा में अनुप्राणित होकर कुछ और आगे बढ़कर बोली, "अब आप इसे अपने पास ही रखिए।"

कमलेश को बोध हुआ, यह उसकी पराजय है। वह सोचता था, 'वह कभी उसे क्षमा न करेगी। पूछेगी कि वह वहां पहुंचा कैसे? न भी पूछेगी, तो मेरी इस अशिष्टता के लिए, अपने अहंकार की झोंक में, विस्फारित नेत्रों से ही, विपुल अवमानना का उद्घोष किए बिना किसी प्रकार मानेगी नहीं। किन्तु उसने तो जैसे प्राणान्तक स्नेह के निमंत्रण में मेरी सारी कल्पना को क्षण-मात्र में व्यथ कर डाला।'

—तो तुम स्नेह-मूर्ति हो लीला! और यह कमलेश तुमको कुछ और समझ बैठा था। उसे क्षमा कर दो। उससे भूल हो गई है। वह सुधार लेना चाहता है। अपनी इस स्नेह-वारुणी को उसके लिए अस्पृश्य ही रहने दो। उसे अदम्य नारीत्व के मायालोक का अभी कुछ पता नहीं है। वह चलते-फिरते गलती कर बैठता है। किन्तु फिर उसे मान्य नहीं बना सकता। क्योंकि वह मानता है कि गलतियां पोषण पाने की चीज नहीं। उनको तो दबा ही देना चाहिए।

कई बार उसने कुछ कहने को स्थिर किया चलते-चलते, किंतु उसकी रसना जैसे तालु से चिपक जाती थी। तब वह एकदम से अपने ही प्रति उग्र हो उठा, 'एक तो पापी, दूसरे कायर। अनुत्तरदायी और अविश्वासी। छिः!' अपने लिए सोचता हुआ, लज्जित हो मन ही मन

में कह गया। फिर प्रकट रूप से बोला, "वास्तव में मुझसे भूल हो गई।" उसे ध्यान आ रहा था, बाबू ने लिखा था, 'कई ऐसे आवश्यक काम हैं, जो तुम्हारे बिना अटके हुए हैं। अब उनको पूरा करने का समय आ गया है।…'

कमलेश की इस विनत मुद्रा को देखकर लीला एकाएक विस्मयाकुल हो उठी, "ऐसी भूल तो सबसे हो जाती है।" अधिक वार्तालाप का अवसर न था। दोनों बाहर मुख्य द्वार पर जा पहुंचे थे। कमलेश का कुली बाबू साहब के पीछे खड़ा था। अन्त में धीरे-से लीला बोली, "आपको पहले ही सोच लेना था।"

बाबू साहब के साथ कमलेश बाहर तो आ गया, किंतु अभी तक वह अपने-आपको एक उलझन, एक समस्या से बाहर न कर सका। वह रेशमी रूमाल अब भी उसके पैंट में पड़ा था और जेब में पड़ी अंगुलियां उसके मर्मस्पर्श के ब्याज में, रह-रहकर उसे उद्वेलित कर देती थीं। निरन्तर अनासक्ति के स्वप्न देखता हुआ वह उस समय अनुभव करने लगा, 'काजर की एक रेख लागि है, पै लागि है।'

इसी समय उसने अपने कुली को पैसे दे दिए और वह अपने लिए स्कूटर खोजने लगा।

टैक्सी पर सामान रख जाने और कुली से निवृत्ति पा जाने के अनंतर बाबू साहब कमलेश की ओर देखते हुए बोले, "होटल में ठहरने की कोई ज़रूरत नहीं। आज तो आपको हमारा अतिथि बनना पड़ेगा। आप फिलासफी के प्राध्यापक हैं और मैं उसका कीड़ा। यों सहज ही आपको न छोड़ूंगा।"

तब तक तीनों टैक्सी में जा बैठे थे।

"लेकिन यदि मेरी वजह से आपको कोई कष्ट हुआ तो? यों मुझे आपका सौहार्द पाने में सुख ही मिलता, किन्तु…।" कमलेश कहते-कहते कुछ अटक गया।

"मैं ऐसे किन्तु को कभी नहीं पालता। यदि पास आता भी है तो

मैं उसकी ओर नहीं देखता। मेरी विनय है कि आप भी इस किंतु-परंतु का साथ कभी न करें।" कहते-कहते बाबू साहब ने टैक्सीवाले से कह दिया, "असबाब रख लो न?" फिर वे कमलेश से बोले, "आप इधर आ जाइए, मेरे पास।" और स्वयं दाईं ओर खिसकते हुए उन्होंने नौकरानी से कहा, "तू आगे निकल जा जमुनी।"

और लीला सोच रही थी—यह आज क्या होने जा रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि इन महाशय ने कोई तंत्र-मंत्र···ना, ऐसा भी कहीं संभव है! तो फिर एक अपरिचित व्यक्ति को साथ ले चलना···?

मनुष्य अपने-आपसे लड़ता रहता है।

मेरा यह मन भी तो कम चंचल नहीं है। नहीं तो मुझे अन्यथा कुछ सोचना ही न चाहिए।

उसी समय जाने क्या हो गया था मुझे, जो मैंने कह दिया, 'आपको पहले ही सोच लेना था।' मैं खुद नहीं जानती कि ऐसी बात मेरे मुंह से निकल कैसे गई। फिर मुझे इतना भी पता नहीं था कि ये इनको अपने साथ घर ले चलेंगे। मैं तो समझ रही थी—सदा को विलग हो रहे हैं। मगर घर में ठहरें भी, तो दो दिन, हद्द चार दिन।

उसके बाद?

उसके बाद—हां, उसके बाद? उसके बाद एक सघन अन्धकार। कभी-कभी जुगनू की चमक और फिर···।

फिर एक निःश्वास।

कमलेश नहीं चाहता था कि वह सर्वथा अपरिचित स्थान में जाकर ठहरे। किंतु ऐसे अप्रत्याशित अनुरोध पर, अस्वाभाविक रूप से परुष बनना उसे स्वीकार न हो सका। स्नेह के अधिकार पर तो वह सदा से आस्थावान रहा है। इस विषय में वह कभी संशय में नहीं पड़ा। यों वह बनावट से भरी संस्कृति, ढोंग से भरे समाज और घिसे-पिटे धर्म के प्रति विद्रोही है। जीवन के उत्कर्ष में समूहगत पुरातन सिद्धांतों और रूढ़िगत धारणाओं के अनुशासन को वह नहीं मानता। वह समझता है

कि मनुष्य अपने-आपमें समर्थ है कि वह जो चाहे, करे।

इस प्रकार विवश होकर उसे टैक्सी में बैठ जाना पड़ा।

बाबू साहब का नाम था प्रबोधकुमार। वे कपड़े के एक बड़े व्यापारी थे। पहाड़गंज के अपने फ्लैट में ज्यों ही वे पहुंचे, त्योंही हरी, उनका नौकर, टैक्सी के निकट आकर असबाब उतारने लगा।

प्रबोध बाबू लीला के साथ आगे-आगे सीढ़ियां चढ़ने लगे। कमलेश अभी नीचे ही था। तभी लीला ने घूमकर एक बार उसकी ओर देखा। उसको कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे वह अपनी चितवन के ब्याज से ही उसे पास बुला रही है। बिना कहे हुए लगता है उसने कह दिया हो, 'आओ न, अब सोचते क्या हो ?'

लीला स्वामी के साथ ऊपर चढ़ गई थी। नौकरानी एक छोटा सूटकेस हाथ में लिए हुए उसके पीछे चली जा रही थी। हरी सिर के ऊपर ट्रंक और बैडिंग रखकर मकान के नीचे आ चुका था। और कमलेश सोच रहा था, 'कोई-कोई स्वप्न इतना प्यारा लगता है कि जान पड़ता है अब स्वर्ग जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है। मरण से पूर्व ही हम स्वर्ग में आ पहुंचे हैं।'

ऐसे स्वर्ग उसके जीवन में पहले भी आ चुके हैं। चिता पर रखी निष्प्राण लवंग के मुख पर जब वह घृत का लेप कर रहा था, तब क्या उसने नहीं सोचा था कि उस दिन, यह मुख मुझसे न जाने क्या कहना चाहता था। क्योंकि उसके बाद जब भाभी उसे सोते से जगाकर एक अन्य कमरे में ले गई थीं तब थोड़ी देर लवंग भी आई थी। अन्दर आते-आते किंचित् ठिठक गई थी।

उसका उस भांति ठिठकना, सिर नीचा करके मन्द-मन्द मुस्कराना, आंखों की पलकें उठाना-गिराना, फिर रूमाल से अधरों को ढक लेना—

वह आज भी भूला नहीं है। तभी एक अन्दाज़ के साथ वह बोल उठा था—'आओ, आओ।'

फिर देर तक बातें होती रही थीं। 'तुमको यहां कैसा लगा? तकलीफ तो होती ही होगी। नई जगह ठहरी। फिर रूढ़ियों और परम्पराओं के अमानवीय अनुशासन का भास. भय, आतंक।'

'यह सब भी तुच्छ हो जाता है, जब कोई अपना बन जाता है।'

'अपना। अच्छा, अपना कौन होता लवंग!'

'एक-मन-प्राण।'

उसका इतना कहना था कि लालटेन की रोशनी मन्द हो चली। तेल चुक गया था या बत्ती का छोर ही छोटा पड़ गया था, कौन जाने!

फिर लालटेन की बत्ती आपसे-आप बुझ गई थी लेकिन उसको बुरा नहीं लगा था। मिलन की उन विरल घड़ियों में जब उसने पूछा—'इस लालटेन को इसी समय बुझना था।'

तब उस सघन अन्धकार में उसने हंसते-हंसते कह दिया था, 'ठीक तो है। कहते हैं—प्रियतम के मिलने पर ऐसा सभी जगह होता है।' निमिष-मात्र में उसे यह सब स्मरण आ गया।

इतने में उसने सुना—बाबू साहब कह रहे हैं, "आप ऊपर चले आइए प्रोफेसर साहब। सामान हरिया बाद में लाता रहेगा।"

कमलेश थोड़ा आगे बढ़ गया। उसने देखा—सीढ़ियों पर दोनों ओर पीतल के चमचमाते हुए रेलिंग लगे हुए हैं। एकाएक उसकी दृष्टि जो ऊपरी सीढ़ी की ओर जा पड़ी, तो उसने देखा बाबू साहब कह रहे थे, "बेधड़क चले आइए।"

कमलेश सीढ़ियां चढ़ते हुए जब ऊपर जाने लगा तो एक बार उसके मन में आया, 'कौन जाने अदृष्ट मुझे कहां बुला रहा है? वैसे आदमी तो मुझे यह भला मालूम पड़ता है।' फिर स्मरण हो आया, उसने अभी स्टेशन पर कहा था, 'मेरी विनय है कि आप किन्तु-परन्तु का साथ कभी न करें।' बात कुछ विचित्र-सी जान पड़ती है। क्योंकि यह नारी भी

तो उनके लिए एक किन्तु है ; फिर वह मन ही मन हंस पड़ा और कहने लगा, 'अगर वह किन्तु है तो मैं परन्तु हूं !'

ऊपर जाकर उसने एक बार अपने दायें-बायें देखा—सामने छज्जे के नीचे आंगन था। तभी मुटल्ली नौकरानी आकर बोली, "इधर आइए मेरे साथ।"

कमलेश उसके पीछे-पीछे चल दिया और सोचने लगा, 'इसको तो कुछ पता होगा नहीं कि जब यह ट्रेन पर गम्भीर निद्रा में लीन थी, तब मैंने मन ही मन इससे दुअन्नी-भर नींद की मांग की थी।'

जमुनी दायीं ओर मुड़कर उसे एक कक्ष में ले गई। और बोली, "यही आपका कमरा है।"

इतने में हरी उसका सूटकेस और बैडिंग फर्श पर रखकर चला गया।

छज्जे पर गौरैया का जोड़ा आकर बैठ गया। दोनों कभी गरदन और चोंच हिलाते और कभी फुदककर अपना आसन बदल देते। कमलेश के मन में आया, 'इस जोड़े में भी एक किन्तु है, दूसरा परन्तु।'

इतने में बाबू साहब आ गए और बोले, "देखिए, अब एक बज रहा है। पाइप तो चला गया। आप ठंडे पानी से नहाना पसन्द करेंगे ? या हाथ-मुंह धोकर पहले चाय पिएंगे और फिर इतमीनान से स्नान और भोजन चलेगा ?"

जमुनी चली गई थी। हरी आकर बोला, "बाबूजी, आपको अन्दर बुलाया है।"

कमलेश ने उत्तर दिया, "मुझको ज़रा बाथरूम तो बता दीजिए।"

प्रबोध बाबू बोले, "इधर आइए, देखिए, यह अलमारी-सी जान पड़ती है न ! मगर यह अलमारी नहीं, बाथरूम है। यह लीजिए।" और दरवाज़ा खोलकर स्वयं अन्दर जाकर कहने लगे, "यहां आवश्यकता की सभी वस्तुएं आपको मिल जाएंगी।" और इसके बाद उन्होंने ठंडे पानी का नल खोलते हुए उसके नीचे अपना हाथ कर दिया और कहा,

"ग्यारह बजे तक यह नल रहता है। खैर कोई बात नहीं, पानी गरम करवाकर मैं आपको भिजवाए देता हूं।"

कमलेश ने पैंट की जेब से सिगरेट निकालकर मैच-बक्स पर ठोकते हुए कहा, "बस ठीक है।" और उसने ठंडे पानी का नल खोलकर बन्द करते हुए कहा, "गरम पानी की मुझे ज़रूरत नहीं, मैं ठंडे पानी से ही स्नान करने का अभ्यासी हूं।"

बाबू साहब जाते हुए कहने लगे, "मैं अभी आया।"

तब तक हरी ने पुनः आकर कह दिया, "बहूजी पूछ रही हैं— इस बखत भोजन अगर पक्का ही बन जाए, तो कैसा हो ?"

प्रबोध बाबू रुककर बोले, "मतलब यह है कि कच्चा भोजन बनवाने में देर लग जाएगी और आपको भूख लगी होगी।"

हरी चला गया था।

कमलेश ने कह दिया, "मेरी असुविधा की आप ज़रा भी चिन्ता न करें।"

अन्यमनस्क लीला कपड़े बदलकर पलंग पर लेट गई थी। कम्बल से शरीर ढककर उसने भीतर पैर फैला लिए थे। उसके मन में एक धुंधलका-सा घिर आया था। वह सोचती थी, 'अब रात आ जाएगी। सब लोग सो जाएंगे, मैं भी सो जाऊंगी। तब उसी घने अंधेरे में चोर जो कहीं घर में सेंध कर बैठा तो!'

उसका रोम-रोम सिहर उठा।

प्रबोध बाबू जब आए, तो वह कुछ नहीं बोली। पास ही कुरसी पड़ी थी, जिसपर एक पत्रिका रखी हुई थी। प्रबोध बाबू ने पत्रिका उठा ली और कुरसी पर बैठते हुए पूछा, "तुमने मुझे बुलाया था ?"

एकाएक सिर से कम्बल उठाकर लीला बोली, "तुमने यह झंझट क्यों पाला ?"

"कैसा झंझट ?"

"इन महाशय को अपने साथ क्यों लिवा लाए ?"

"क्यों ? आदमी मुझे सभ्य और विचारक जान पड़ा; एक-आध दिन हमारे साथ रह लेगा, तो इसमें हमारा क्या कम हो जाएगा ? पर, तुम परेशान-सी क्यों जान पड़ती हो ?"

लीला कुछ नहीं बोली। वह कहने जा रही थी, 'दुनिया में बहुतेरी ऐसी वस्तुएं हैं जो अच्छी ही नहीं, बहुत अच्छी लगती हैं। पर क्या इसीलिए हम उन्हें ले सकते हैं !'

किन्तु केवल इतना कह दिया, "जाओ। मुझे कुछ नहीं कहना है।" साथ ही कम्बल से उसने सिर ढक लिया।

प्रबोध बाबू बोले, "मगर तुम लेट क्यों रहीं, तबियत तो ठीक है न ?"

लीला ने कम्बल के बाहर मुंह निकालकर कह दिया, "मैंने जमुनी को सब समझा दिया है। चाय बन रही है। वह अभी वहां दे आएगी। साथ के लिए बिस्कुट और मेवा हो जाएगा।"

प्रबोध बाबू बाथरूम की ओर जाते हुए कुछ आत्मलीन हो उठे। '···कभी-कभी इसकी बातें मैं समझ नहीं पाता।'

पहले लीला चुपचाप लेटी रही। गुमसुम, खोई-खोई-सी ?···मैं इस कमरे से बाहर न निकलूंगी, किसीसे कोई बात न करूंगी।—हुं, एक-आध दिन हमारे साथ रह लेगा, तो इसमें हमारा क्या कम हो जाएगा !

'एक-आध दिन' ! ऐसे ही मैं अगर सोचूं······एक-आध दिन मैं अगर···! एक निश्वास !

वह करवटें बदलने लगी। फिर थोड़ी देर लेटी रही। उसके अनन्तर एकाएक उठी और शाल से अपने शरीर को ढके हुए रसोईघर में जा पहुंची। पहले द्वार पर खड़ी देखती रही—कौन-कौन-सा साग बन रहा है। हरी-हरी धनियां, सोया, मेथी, टमाटर, मटर, अदरक, गोभी, आलू ······बहुत कुछ एक डलिया में रखा था। लीला ने जमुनी से पूछा, "चाय पिला आई ?"

जमुनी बोली, "आपके लिए भी तो ले गई थी, लेकिन आप बोलीं नहीं। अभी रखी है। गरम है।" और इतना कहकर लीला के लिए चाय ढालने लगी।

थोड़ी देर में जब लीला चाय पीने लगी तो उसने पूछा, "साहब कुछ कहते थे ?"

जमुनी ने उत्तर दिया, "कहते थे, बहूजी चाय बहुत अच्छी बनाती हैं। मगर स्वभाव इनका कुछ अजीब-सा जान पड़ता है। सभी लोग बैठकर चाय पीते हैं, मगर ये साहब कमरे में टहलते हुए चाय पी रहे थे। और एक बार तो देखा—अपने-आप हंसने भी लगे। जबकि कमरे में दूसरा कोई नहीं था।"

लीला कुछ सोचने लगी। और आश्चर्य के साथ बोली, "अच्छा!"

इतने में हरी आ गया और बोला, "बहूजी, सेम अच्छे नहीं थे। इसलिए मैं नहीं ले आया। और बैंगन भी जैसे आप पसन्द करती हैं, गोल-गोल, नहीं मिले।"

"यहां काम करते-करते बुड्ढे हो गए मगर तुम्हें तमीज़ न आई हरी। जब मेहमान घर में आए, तब ये बहाने नहीं चलते। तुमको एक नहीं दस दुकानें देखनी चाहिए थीं। जाओ, गोल बैंगन और सेम के बीज ले आओ।"

बिना कुछ कहे हरी तुरन्त जाने लगा, तभी लीला बोल उठी, "और देखो हरी!"

हरी जाते-जाते रुक गया।

अब लीला कह रही थी, "पाव-भर खोआ भी लेते आना।"

"बहुत अच्छा बहूजी।" उत्तर के साथ यही सोचता हरी चला गया कि ये साहब तो कभी आए नहीं। रिश्ते में कौन होते हैं, यह भी नहीं मालूम। बहूजी की तबियत भी आज नरम मालूम पड़ती है, फिर भी रसोई में बैठकर तकलीफ उठा रही हैं। कौन जाने रेलगाड़ी में सोना हुआ कि नहीं। मगर इन बड़े आदमियों को सफर में भी क्या तकलीफ

होती होगी। शराब के दो पेग गले के नीचे उतारते ही सारी तकलीफ जाने कहां हुर्र हो जाती है। लेकिन हमारे मालिक ऐसे नहीं हैं।

लीला बैठी-बैठी जमुनी को बतलाती रही, "गोभी-आलूवाली भाजी में किशमिश भी डाल देना और इस गोभी के फूल के टुकड़े मत करना, यह समूचा बनेगा। बैंगन की कलौंजी बनेगी। किसी चीज़ में दालदा का व्यवहार न कर, देसी घी ही लगाना। खोआवाली भाजी मैं अपने सामने बनवाऊंगी।"

जीवन अपने-आप सब कुछ सिखा देता है। काल-क्षेप बड़े से बड़े घाव भर देता है। कमरे के अन्दर चाहे जितना धुआं भर गया हो, लेकिन खिड़कियां खोल देने के बाद आंखों की कड़ुवाहट अपने-आप मिट जाती है। अंधेरी रात में कुछ दिखलाई नहीं पड़ता ; लेकिन जब आदमी सो जाता है तब उसकी अन्तस् चेतना पर जीवन का कोई भी कोना ऐसा नहीं बचता, जो स्वप्न में साफ-साफ दिखलाई न पड़े। जो कभी हो नहीं सकता, उसकी सम्भावना भी दृश्य का रूप धारण कर लेती है, जबकि मनुष्य चेतन नहीं अवचेतन रहता है। जो व्यक्ति मृत और अस्तित्वहीन हो जाते हैं, परिकल्पनाओं में वे भी बोल उठते हैं। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्थूल जगत् में जिनको हम कभी देख नहीं सकते, मानस-लोक में पहुंचकर वे इतने सजीव हो उठते हैं कि हमारे साथ मिल-बैठकर उसी प्रकार हंसते-बोलते और रो उठते हैं,जिस प्रकार कभी जीवन-काल में रहते थे।

कमलेश के भावुक मानस पर परिस्थितियों का कुछ ऐसा प्रभाव हो आया था कि जब भी वह एकान्त में रहता, उसे स्मृतियां घेर लेती थीं। घर में उठते-बैठते उसे लवंग की बहुत याद आती थी। सोचता, 'यही वह शिला-खण्ड है, जिसपर बैठकर लवंग नहाया करती थी। पैरों में

महावर का रंग भी तब छूट नहीं पाया था, इसीपर एड़ियां रगड़-रगड़-कर, साबुन मल-मलकर, वह नहाती थी। एक दिन तो मैंने उसे नहाते समय कुछ गुनगुनाते हुए भी पाया था।...यही वह स्थान है, जहां वह भोजन के बाद थोड़ी देर बैठकर पत्र-पत्रिकाएं पढ़ती-पढ़ती सो जाती थी।...'

लेटा-लेटा वह एकाएक उठ बैठता। पलंग से उतरकर कभी कमरे में टहलने लगता और कभी उसी कपाट की ओट में जा खड़ा होता, जहां खड़ी हुई लवंग उसे दिखाई पड़ी थी।...बस इसी तरह, ठीक इसी स्थल पर अवगुण्ठन को आंखों के ऊपर तक उठाकर उसने मेरी ओर देखा था। इस कमरे के साथ इस धरती, इन दीवारों और छत के साथ, उसकी सांसों का सम्बन्ध रहा है; साथ ही उस मुस्कराहट का भी जो मुझे जीवन में केवल एक बार देखने को मिली थी—बस, उसी रात को।

सहसा एक निःश्वास फूट पड़ता और वह सोचने लगता, 'सब स्वप्न है। सब मिथ्या है। कभी कमर के पीछे हाथ में हाथ लेकर वह उसी कमरे में उत्तर-दक्षिण टहलता हुआ सोचता—भाभी जब मुझको यहां भेजने आई थीं, तब उन्होंने मुझसे कुछ कहा था। कहा था—आज तुमको यहां सोना है लला, इसी कमरे में।—फिर उन्होंने यह भी कहा था—आज का दिन जीवन में कभी नहीं भूलता।' ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब इन स्मृतियों के साथ उसकी आंखें न डबडबा आतीं।

फिर एक दिन अम्मा बोलीं, 'भाभी ने तुमको बुलाया है कमलेश। जाओ, दो-चार दिन वहीं हो आओ। तबियत ही कुछ बहल जाएगी।'

तब उनके कहने से वह अपने रज्जन दद्दा के यहां आया था। सामने पड़ते ही भाभी की चरण-धूलि जब उसने अपने मस्तक से लगाई थी, तो आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा था, 'सुखी रहो।'

फिर उन्होंने बाजार से मिठाई मंगवाई और ऊपर से गिलास-भर दूध पीने के लिए विवश किया। घर का हाल-चाल पूछती रहीं।

'बूआजी तो अच्छी तरह से हैं ? मुझे उनकी बड़ी याद आती है। अब उनका क्या इरादा है ? इस वर्ष तो तुम्हारा ब्याह होने से रहा ! मगर दुलहिन की बरसी हो जाने के बाद फिर कोई अच्छा सम्बन्ध तै करना ही पड़ेगा।'

फिर लवंग की याद कर-करके रो पड़ी थीं अपने-आप।

'क्या बताऊं लला, मुझको वह कितना मानती थी ! कभी ऐसा नहीं हुआ कि इच्छा न होने पर भी आग्रह कर-करके उसने मुझे एक-आध कचौड़ी अधिक न खिला दी हो। मेरी बनाई हुई चटनी उसे बड़ी प्रिय लगती थी। एक दिन मैंने कहीं कह दिया—बहुतेरे लोग चटनी को दाल-भात की तरह खाते हैं।

'मेरी इस बात पर वह मुंह बिचकाकर बोली—हटो जीजी, तुम भी कैसी बातें करने लगीं।

'मेरे मुंह से निकल गया—एक बार स्वाद मिल जाने के बाद लोग यह रीति-नीति भूल जाते हैं।

'मेरे इतना कहते ही लाज के मारे उसने अपना मुंह रूमाल से ढक लिया। फिर न जाने क्या सोचकर हंसती-हंसती बोल उठी—तो तुम उन लोगों को चटनी और दाल-भात का अन्तर बतला क्यों नहीं देती जीजी ?

'मैंने कह दिया—जानते सब हैं दुलहिन, मगर मानते विरले हैं ; क्योंकि व्यक्तिगत अनुभव के आकर्षण के आगे ज्ञान की ज़रा कम चलती है।

'क्या-क्या बतलाऊं ! कभी उसकी ये बातें याद आ जाती हैं, चुप-चाप रो लेती हूं।'

सब सुनता रहा था कमलेश, कोई उत्तर न दे सका था। अन्त में एक निःश्वास के साथ वे बोलीं, 'कैसा भी दुःख हो भुलाना ही पड़ता है लला।'

सायंकाल वह जो चाय पर बैठा तो उसने देखा—भाभी अपने साथ एक लड़की लेकर आ पहुंची हैं। शरीर से थोड़ी दुर्बल, लेकिन यौवन में एक क्षुधा। वर्ण उजला, ब्लाउज़ थोड़ा चुस्त। गोल जूड़े पर काली जाली।

झील-सी आंखें, चितवन देखकर तैरने की तबियत हो आई थी। लम्बी नासिका की कील पर एक मोती। बिस्कुट के रंग की साड़ी पर सिंदूरी बार्डर। नागरा जूतिया, जिसकी किनारी पर सुनहरा आवरण। जान पड़ा, घर से चलने का मुहूर्त बुरा नहीं रहा।

सोचा—परिचय की प्रतीक्षा कर लेना ही उचित होगा। पत्रिका के खुले पृष्ठ से पलकें उठा-उठाकर दो-चार बार ध्यान से देख चुका था। कमरे में टंगे कलेण्डर के पास पहुंचते-पहुंचते वह एकाएक ठिठक गई थी।

फिर सहसा कमलेश को लवंग की याद आ गई थी, 'थोड़ा ठहरो न? हर काम जल्दीबाज़ी में अच्छा नहीं होता!' अब आंसू नहीं निकलते। कोई बात नहीं। काश, लवंग इस समय मेरे पास यहीं बैठी होती! दोनों मिलकर ऐसी कानाफूसी शुरू कर देते कि हंसी फूट पड़ती। ...अलमारी में तबले की जोड़ी रखी है। रज्जन दद्दा को शौक है बजाने का। अगर मैंने भी यह विद्या सीख ली होती तो एक-आध तोड़ा इसी समय बजाना शुरू कर देता। अच्छा, बैडमिण्टन का शटल-कॉक ही इस समय बाहर से फेंककर मार दूं! या एकदम से खांसना प्रारम्भ कर दूं। या ताश की गड्डी सामने पेश करके पूछूं, स्वागत में कुछ तो खास बात होनी चाहिए।

फिर भाभी ने पास आकर उससे कमलेश का परिचय कराया, लेकिन यह नहीं बतलाया कि कमलेश के साथ कोई दुःखद घटना भी घटित हो चुकी है। एक तरह से यह भी अच्छा ही हुआ। फिर उसकी प्रशंसा करते हुए बतलाया कि बी० ए० करने के बाद पढ़ना छूट गया है। वैसे इसका तो आगे पढ़ने का इरादा था, लेकिन दरोगिन चाची ने कह दिया—बस,

इतना बहुत है। म्यूज़िक कालेज ज्वाइन कर रखा है। इधर पिछले महीने टायफाइड हो गया था। अब वैसे तबियत ठीक है। सेशन प्रारंभ होते ही फिर जाने लगेगी। कण्ठ बहुत मधुर है। और फिर नवयुवती से कहा, 'सुनाओगी न मल्लिका रानी ?'

मल्लिका कुछ संकुचित हो उठी और बोली, 'आप तो मेरी यूं ही तारीफ कर रही हैं।' फिर थोड़ा-सा कमलेश की ओर उन्मुख होकर बोली, 'वास्तव में मुझे कुछ आता-जाता नहीं है।'

जान पड़ा जैसे कान में मुंह लगाकर लवंग ने कह दिया हो, 'यह भी एक ढंग है। देखते जाओ।' देर तक कानों में तेज़ हवा की लहरें गूंजती रहीं।

फिर उसने मल्लिका के उपर्युक्त कथन पर विचार किया। सोचा, 'क्या उसका यह सारल्य प्रकृत हो सकता है ?'

कमलेश विचार में पड़ गया था, मगर भाभी कहती जा रही थीं, "बी०ए० में, हिन्दी में डिस्टिंक्शन पा चुकी है।"

कमलेश फिर भी कुछ न बोला। उससे यह भी न कहते बना कि जी, मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई और संगीत तो मेरा बहुत प्रिय विषय रहा है। अगर कष्ट न हो तो कोई एक-आध चीज़ सुनाइए।

'मैं अभी आई।' इतना कहकर भाभी भीतर चली गई थीं।

मल्लिका ने चाय ढालने के लिए केतली जो उठाई तो संकोच के कारण हो या किसी आशंका के कारण गरम चाय की एक छलक उसके अपने हाथ पर पड़ गई थी। तभी केतली झट से यथावत् रखकर वह हाथ को झटका देकर अंगुलियां हिलाने लगी तो मुखपर एक लाली परिव्याप्त हो गई।

तब विवश होकर कमलेश को बोलना पड़ा था, 'हाथ जल गया क्या ?'

मल्लिका प्याले में चाय ढालती हुई कुछ मुंह बिचकाकर बोली, "ऊंह ! मान लो जल भी गया हो तो क्या है ? होम करते हाथ जलने

में हम लोगों की एक आधुनिक परम्परा की परिपूर्ति तो हो जाती है !'

मल्लिका के इस कथन से कमलेश के मन को एक चोट लगी थी। एक बार ध्यान से उसने उसकी ओर दृष्टि भी डाली थी। मन में अनेक प्रकार की शंकाएं उठी थीं। मानवीय समवेदना की पलकें उठ गई थीं।

—क्या ऐसी कोई बात है कि पहले भी मेरे जैसे कई व्यक्तियों के सामने इसको इसी प्रकार का अभिनय करना पड़ा है ? हो सकता है, बातचीत भी कुछ आगे बढ़ी हो पर अन्त में कुछ स्थिर न हो पाया हो।

मन नहीं माना था। हाथ में हाथ लेकर देखा, जलन ऐसी कोई खास नहीं जान पड़ी थी।

मल्लिका ने हाथ नहीं छुड़ाया। इस अनुभूति से कमलेश को कुछ-कुछ अच्छा-सा लगा था।

बड़ी विचित्र बात है। किसीका कष्ट, किसीकी प्रेरणा।

प्याले में चाय ढालने में कितनी देर लगती है। चीनी घोलने के लिए उसने चम्मच उठाया ही था कि कमलेश ने कह दिया, 'आपको शायद मालूम न होगा कि इसी दुनिया में ऐसे लोग भी रहते हैं, जो भूखों मर सकते हैं, पर किसीका धर्म-संकट नहीं देख सकते। दुर्भाग्य से मैं भी उसी जमात का प्राणी हूं। इसलिए भीतर के किसी गोप्य ताल-मेल से प्रभावित होकर अगर आप सोच रही हों कि किसी परम्परा के पालन-सम्बन्ध को लेकर मैं यहां आया हूं तो यह आपका भ्रम ही होगा।'

इसी समय मल्लिका ने पलकें उठाकर एक बार उसकी ओर स्थिर होकर देखा, फिर चुपचाप चाय का प्याला उसके सामने रख दिया। तब तक भाभी भी कुछ नमकीन और मिठाइयां लेकर आ पहुंचीं और कुरसी पर बैठती हुई बोलीं, 'अम्मा कह रही थीं, मल्लिका जब गाने लगे, तो मुझे भी बुला लेना।'

मल्लिका बोली, 'आज तो मुश्किल है भाभी। बिलकुल मूड नहीं है।'

कमलेश स्वयं नहीं जानता कि किसी कर्तव्य-कर्म के प्रति बलवती

प्रेरणा कैसे उत्पन्न की जाती है। दूसरों को चाहे बतला भी दे और अवसर आने पर किसी विषय पर प्रवचन भी झाड़ दे, लेकिन अपने-आप पर उसका वश नहीं रहता।

मल्लिका की इस बात पर एकाएक उसके मन में आया—जिस अभिप्राय से यह प्रेरणा न होने का सहारा ले रही है, परीक्षा की उस भावना को ही किसी प्रकार समाप्त कर दिया जाए, तब शायद यह अपने संगीत-नैपुण्य की कोई बानगी दे भी दे।

अतः झटपट चाय-पान समाप्त करते हुए उसने कह दिया, 'आप संगीत-विद्या में महिमामयी होने पर भी इतनी हिचकिचा रही हैं जैसे किसी परीक्षा में बैठ रही हों।'

कमलेश शायद आगे और भी कुछ कहता, लेकिन तब तक भाभी बोल उठीं, 'परीक्षा की इसमें क्या बात हो सकती है? जब दो आदमी मिलते हैं तो जैसे अपनी-अपनी बात कहते हैं वैसे ही अपनी विद्या और कला का भी थोड़ा-बहुत परिचय देते ही हैं। सुनती हूं, तुम भी तो कभी-कभी कविताएं लिखा करते हो। तुम्हीं कोई कविता सुनाओ न? संभव है, इसको भी अपना संगीत सुनाने का मन हो आए।'

अपने को संभालती हुई मल्लिका बोली, 'मैं पहले से कोई वचन तो नहीं देती, लेकिन इतना जानती हूं कि सम्भावना की आंखें बड़ी प्यारी और ममतामयी होती हैं। जिसको हम रचना या सृष्टि कहते हैं, संभावना बहुत पहले से एक धाय की तरह उसका पालन-पोषण करने लगती है। बात कहां तक सही है, यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु बहुतेरी संभावनाएं केवल आशा की देन होती हैं।'

मल्लिका की इस बात से कमलेश कुछ प्रभावित हो गया। अतः उसने कह दिया, 'तो फिर सुनिए। मेरी एक कविता है:

बुरा मत मानना,
मिलने का वचन नहीं देता हूं।

और तो सब कुछ जानता हूं,
एकमात्र अपने को नहीं पहचानता ।
आज यहां तुम मेरे सामने हो ।
एक-एक मुद्रा और भंगिमा से,
ऊर्ध्वमुखी किसलयी पलकों से,
नयनों की तृष्णा की गोपनीय भाषा से,
अधरों के विरल उन्मीलन से,
दांतों की श्वेत शुभ्रचपला की झलकों से,
ग्रीवा के मोड़ों की करवट के तेवर से,
सांसों की धौंकनी से,
वक्ष के कँगूरों को,
ऊपर उठाते और नीचे गिराते हुए,
तुमने अभी,
मेरे अतीत की जो सुधियां जगाई हैं,
पूरे वर्तमान को झकझोर डाला है ।
कई बार सोचकर देखा है, देखकर सोचा है—
यही, केवल इतना ही सत्य है ।
भोर कहां होगा,
रात कहां बीतेगी,
कौन कह सकता है ?
अतएव आज के मिलन का जो अर्थ है,
जीवन की एकमात्र वही उपलब्धि है ।
बुरा मत मानना,
मिलने का वचन नहीं देता हूं !

कविता सुनकर मल्लिका स्तब्ध हो उठी । मुंह पर जैसे सफेदी छा गई हो । होंठ कांप उठे और नासिका के छिद्र फैल उठे । एकाएक बोल उठी, 'बड़ी विचारोत्तेजक कविता है ।'

कमलेश ने जान-बूझकर भरे सरोवर में तट के बुर्ज से एक ढेला फेंक दिया था। तरंगों का इधर-उधर फैलकर लहराना और तट से टकराना स्वाभाविक था।

उसकी कल्पना के अनुसार भाभी पहले गम्भीर हो उठी थीं। लेकिन वे फिर तत्काल संभल गईं और मुस्कराती हुई बोलीं—चलो, ठीक है। मुझे जिस बात की चिन्ता थी, भगवान ने दूर कर दी।

फिर उन्होंने मल्लिका को लक्ष्यकर कह दिया, 'बुरा मत मानना मल्लिका, इधर कई महीने से भैया की तबियत बहुत खराब चल रही थी। हम सभी लोग बहुत चिन्ता में पड़ गए थे। इस कविता ने कम से कम इतना तो किया कि मेरी वह चिन्ता दूर हो गई। कविता वास्तव में भयानक है। आज के अस्तित्ववादी मानव को एकदम से खोलकर सामने उपस्थित कर दिया है मेरे कवि भैया ने। छपने पर सम्भव है, लोग टीका-टिप्पणी भी करें। लेकिन मैं इसमें कोई बुराई नहीं देखती। इतना क्या कम है कि कवि अपने प्रति 'सिंसियर' (ईमानदार) है।'

अ। मल्लिका के मन में आया, 'अपने कथन के प्रारम्भ में मैंने ही पहले बिना सोचे-समझे कह दिया था—मैं पहले से वचन तो नहीं देती···। हो सकता है, अवसर देखकर ही इन्होंने यही कविता सुना देना उचित समझा हो।'

तब वह उठकर खड़ी हो गई। बोली, 'अब चलूंगी भाभी।'

'बिना कोई चीज़ सुनाए चली जाओगी ?' भाभी ने उत्तर दिया।

मल्लिका हंस पड़ी। बोली, 'मैं पहले ही कह चुकी हूं—मैं कोई वचन नहीं देती। मगर इससे क्या ? अभी तो आप रहेंगे, दो-चार दिन।'

'ना मल्ली, इससे बढ़कर फिर कोई अवसर न मिलेगा कभी। भैया का कवि अगर कहता है—मिलने का वचन नहीं देता हूं—तो तुम अपने संगीत के माध्यम से मीरा की वाणी में क्यों न कहो—दूखन लागे नैन, दरस बिन।'

फलतः मल्लिका ने फिर यही गीत आत्म-विभोर होकर जैसे अपने

सम्पूर्ण अनुराग में डूबकर सुनाया था और कमलेश की आंखों के आंसू झरना बन गए थे।

भाभी ने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी और कमलेश बड़ी देर बाद स्थिर हो पाया था। रात में जब वह रज्जन दद्दा के साथ भोजन से उठा था, तो भाभी के हाथ से पान लेते हुए उसने कहा था, 'भाभी, तुम मुझे चाहे जो कुछ कह लो, लेकिन उस समय मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे मेरी लवंग आज तक भूखी है !

भाभी की आंखें डबडबा आई थीं। आंसू पोंछते हुए उन्होंने कहा था, 'आस्थाओं का क्रन्दन ऐसा ही प्राणान्तक होता है लला ! अपना एक अस्तित्व ही तो है, जो मनुष्य को जीवित रहने की प्रेरणा देता है।'

कमलेश की आंखों में आंसू छलछला आए। द्वार पर उसने देखा—हरी खड़ा था। थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद।

कमरे में एक कुरसी और टेबिल पहले से रखी थी। हरी ने आकर उसके कागज़-पत्र उठाकर अलमारी में रख दिए और मेज़ को गीले कपड़े से पोंछकर उसपर प्लास्टिक का आवरण डाल दिया और एक दूसरी कुरसी टेबिल के उस पार लगा दी।

जमुनी थाल में कटोरियां लगाकर पूरियां, अचार, मुरब्बा आदि सजाकर ले आई।

कमलेश बोल उठा, "आज आपका क्या कार्यक्रम है ?"

"आज का सारा कार्यक्रम केवल आपके साथ समय बिताने का है। रविवार को यों भी छुट्टी का दिन है।"

कमलेश के मन में आया, 'और तो सब ठीक है। लेकिन 'किन्तु' के बिना इन महाशय के साथ समय बिताने में कुछ मज़ा नहीं।'

जमुनी जब दूसरी थाल लाने लगी, तब तक लीला नहा-धोकर, कपड़े बदलकर, मुंह में पाउडर, आंखों में सुरमा, होठों पर लिप्स्टिक और भाल पर लाल और सफेद रंग की बुंदकियों से र्चाचत मुकुट-चिह्न-परिपूर्ण कनक-लता-सी बनकर तैयार हो चुकी थी। तभी वह बोली, "तीसरा थाल भी यहीं ले आना।" कथन के बाद वह पुनः श्रृंगार-कक्ष में जा पहुंची। उसे एक बार पुनः दर्पण देखना था।

आगे-आगे दो थाल सजाए जमुनी और पीछे से लीला जब उस कमरे में पहुंची, तो प्रबोध बाबू बोल उठे, "तो अब बजाय कुरसी-टेबिल के हमको इस तखत पर बैठना होगा। रख दो, रख दो, थाल यहीं टेबिल पर रख दो, और हरी को भेजो, फौरन !"

इतने में हरी दो शीतलपाटी लेकर अन्दर आ गया।

कमलेश सोचने लगा, 'इसका मतलब यह हुआ कि पहले से यह सब तै नहीं था। केवल गृह-स्वामी के साथ ही हम भोजन पर बैठनेवाले थे। साथ बैठकर ही खाने का मन पहले न रहा होगा।'

पत्नी को इस ठाट में देखकर प्रबोधबाबू मुस्कराते हुए बोले, "यह कुछ बात हुई !"

एकाएक रूमाल लीला के मुख पर आ गया, तो कमलेश ने लक्ष्य किया कि यह रूमाल उसीके जोड़ का है, जो मेरे पास रह गया है। उसे फिर उसके इस कथन का ध्यान हो आया, 'पहले ही सोच लेना था।'

लीला कुछ संकुचित हो उठी। बोली, "मुझे तैयार होने में थोड़ी देर हो गई।"

हरी ने तख्त के ऊपर शीतलपाटी और फिर उसके ऊपर बीचोंबीच रंगीन प्लास्टिक-शीट डाल दिया था।

प्रबोधबाबू जब उसपर थाल रखने लगे, तो पहले आया हुआ थाल लीला ने अपने आगे रख लिया।

कमलेश इस बात को लक्ष्य करते हुए समझ गया कि इसका भी अपना एक हेतु है। थोड़ा भी ठंडा हो गया थाल वह मेरे सामने नहीं

रखना चाहती। और भोजन पेट का ही नहीं, मन का भी होता है!

जब दोनों बैठ गए, तो प्रबोधबाबू बोले, "संयोग इसीको कहते हैं। कहां के आप, कहां के हम! ट्रेन की भेंट, रात-भर का सफर और इस समय का यह सहभोज!"

लीला सोच रही थी, 'मिलत एक दारुण दुख देहीं—बिछुरत एक प्राण हर लेहीं।'

कमलेश बोला, "मगर एक बात आपको नहीं मालूम है। और अगर मालूम भी हो, तो उसपर आपका ध्यान नहीं गया।"

"वह क्या?"

तब तक लीला बोल उठी, "अब आप लोग शुरू क्यों नहीं करते?"

प्रबोधबाबू बोले, "हां भई, अब शुरू करो।"

"कीजिए।" कमलेश ने कह दिया।

उसे अपना अतीत याद हो आया—लवंग के साथ इस तरह बैठकर खाने का उसे अवसर ही नहीं मिला।

"पहले अतिथि।" प्रबोधबाबू ने उत्तर दिया।

तब कमलेश ने कह दिया, "न मैं, न आप, मेरा प्रस्ताव है कि पहले भाभी।"

लीला मुस्कराने लगी और प्रथम कौर मुंह में डालती हुई बोली—"मुझसे एक गलती हो गई।"

"गलती की बात बाद में सुनूंगा। पहले प्रोफेसर साहब, आप बतलाइए, क्या कहने जा रहे थे?"

कमलेश गंभीर हो गया। बोला, "संयोग का भावार्थ है अकस्मात्। और यह अकस्मात् मिलन और विच्छेद, दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है। अर्थात् कोई भी संयोग, वियोग-सम्भावनाओं से मुक्त नहीं होता। जैसे सृष्टि एक संयोग है, वैसे ही मृत्यु भी एक संयोग है। संयोग आज भी है और कल भी है। पर वास्तविक संयोग वह है जो न आज है, न कल। वह दोनों के रहस्य, प्रभाव और विवेक के मर्म को जोड़ता हुआ

किसी भी क्षण पर आश्रित है। वह क्षण अवश्यम्भावी तो है, पर है अनिश्चित।

कौर जैसे मुंह का मुंह में ही रह गया। अवाक्, स्तब्ध होकर लीला, कमलेश को एकटक देखती रह गई।

प्रबोधबाबू बोले, "अच्छा हो, हम लोग भोजन करने के बाद इस प्रकार के विवाद में पड़ें।"

कमलेश हंस पड़ा। बोला, "पर इसका शुभारम्भ तो आप ही ने किया था। अब आप ही ऐसा कह रहे हैं!"

लीला बोली, "मैं तबसे यही सोच रही हूं कि हम लोग रात से दिन पर आ गए। दोपहर बीत गई और अब तो तीसरा पहर भी लग गया, परन्तु आपका नाम मैं अब तक न जान सकी।"

"भाई साहब, देख लीजिए, यह कितना बड़ा आक्षेप है।" कमलेश प्रबोधबाबू की ओर देखता-देखता लीला की ओर उन्मुख होकर बोला, "अरे किसीने नाम पूछा भी कि, मैं 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' बनकर सब कुछ योंही बतला देता।"

लीला पानी का एक घूंट कण्ठस्थ कर बोली, "अतिथि बन जाने के बाद तो यह शिकायत न होनी चाहिए। फिर अब तो आप मेरे देवर भी बन चुके!"

"मगर भाभी, देवर को 'आप' नहीं कहते। वह 'तुम' होता है!"

लीला गम्भीर हो गई। वह सोच रही थी, 'पर वास्तविक संयोग वह है जो न आज है न कल···! वह क्षण अवश्यम्भावी तो है, पर है अनिश्चित। बाप रे बाप! इनसे तो बात करना दुष्कर है।'

तभी प्रबोधबाबू ने कह दिया, "यह कुछ बात हुई! मगर लीला, तुम अपनी गलती तो बताओ।"

लीला की पलकें एक बार उठीं और गिरीं। उसने कमलेश की ओर उन्मुख होकर, डरते-डरते उत्तर दिया, "मैं तुमसे नहीं, इनसे कह रही थी कि हम लोग यह पक्का भोजन सायंकाल ही करते हैं। उचित तो यह

था कि इस समय कच्चा ही भोजन बनवाती । जितनी देर लग गई है, उसके हिसाब से तो अब तक वह भी तैयार हो जाता।"

"मगर अगले दिन ही नहीं, घंटे-भर बाद होनेवाली स्थिति को हम कैसे जान सकते हैं।" मुस्कराते हुए कमलेश ने कह दिया, "फिर सब प्रचलन की बातें हैं। जिसको आप कच्चा कहती हैं वह भी पक्का ही होता है। संत कबीर ने सब कुछ कह डाला है—चलती का नाम गाड़ी है।"

प्रबोधबाबू के मुंह से निकल गया, "यह कुछ बात हुई !"

इसपर लीला और कमलेश दोनों हंसने लगे ।

भोजन चलता रहा । लीला फिर एकाएक आत्मलीन हो उठी । तब कमलेश ने अपना नाम, पता-ठिकाना सब कुछ बतलाते हुए कह दिया, "सृष्टि की हरएक वस्तु कृत्रिम है । मेरा यह 'कमलेश' नाम भी कृत्रिम है। बचपन का रखा नाम सोहनलाल था। मेरी सार्टिफिकेट्स में भी यही है । पर इस नाम से जो कुछ बोध होता था, उससे मुझे चिढ़ थी। क्योंकि सोहन के नाते मुझमें कुछ नहीं है । जहां तक रूप का सम्बन्ध है, मैं अपने को उससे हीन समझता हूं । आप देख ही रहे हैं, चार-पांच केशों ने मुझपर हंसना शुरू कर दिया है। एक दांत भी निकलवा चुका हूं !"

इतने में पानी पीकर लीला उठकर खड़ी हो गई। बोली, "मुझे तो अब क्षमा ही करना होगा।" हरी जब लीला के हाथ धुला रहा था, तब जमुनी कह रही थी, "बहूजी, पड़ोस में जो वर्माजी रहते हैं न, उनकी मांजी चांदनी चौक से लौट रही थीं । रास्ते में कहीं फुटपाथ पर इस बुरी तरह गिर पड़ीं कि बाईं ओर का कूल्हा ही उतर गया । बड़ी मुश्किल से अब होश में आ पाई हैं !"

जमुनी अभी अपनी बात पूरी कर ही पाई थी कि कमलेश बोल उठा, "कहिए, मैं अभी क्या कह रहा था ! अरे मैं कहता हूं, आप अपने चौबीस घंटे का कोई भी कार्यक्रम बनाइए, अन्तर न आ जाए, तो

कहिएगा—'सब बकवास है।' "

प्रबोधबाबू आचमन करके बाहर चले गए और लीला अपने कमरे की ओर मुड़ गई।

प्रबोधबाबू जब लौटकर आए, तब चार बज चुके थे। अब धूप द्वार के ऊपर चली गई थी। कमरे के आगे छज्जे पर पांच फुट की ऊंचाई पर जो खूंटियां थीं, उनपर दो के अन्तर से बन्धी लीला की वह साड़ी सूख रही थी जिसको पहनकर वह बनारस से चली थी। रसोईघर के उस पार, नल के पास, कोठरी के अन्दर से बर्तन धोने का स्वर आ रहा था। एक खूंटी पर बैठा चिरौटा अपनी गर्दन इधर-उधर घुमाता हुआ कुछ देख-देखकर फुदक रहा था। मकान के नीचेवाले भाग में जो लोग रहते थे, उनमें से एक प्रौढ़ा नारी चारपाई पर ऊन की लच्छी और उसके डोरे फैलाए हुए बुनाई का काम कर रही थी और उसकी बहू अपने बच्चे को सीने से लगाए, ऊपर से थपकियां देती हुई कोई लोरी गुनगुना रही थी।

प्रबोधबाबू जब कभी बाहर से आते तो द्वार पर खड़े होकर एक बार घर के सारे वातावरण पर चुपचाप एक विहंगम दृष्टि अवश्य डालते थे।

आज भी ऐसा ही हुआ। ऊपर आकर द्वार पर जरा ठिठके, तो क्या देखते हैं—डाकबाबू की बहू अपनी साड़ी का अंचल दायें कन्धे के ऊपर से बायें कन्धे पर डाल रही है। उसकी भाल की बिन्दिया दमक उठी है। दृष्टि पड़ते ही झट उसने सिर की साड़ी आंखों के ऊपर तक खींच-कर ढक ली।

प्रबोधबाबू दायें ओर मुड़कर उस कमरे से आगे बढ़ने लगे, जिसमें कमलेश ठहरा हुआ था। तभी एक बार उन्होंने अधखुले दरवाज़े के

भीतर झांककर देखा—कमलेश सिर तक कम्बल ओढ़े हुए सो रहा है और पलंग के नीचे सिगरेट का खाली पैकेट पड़ा हुआ है। पास रखी कुरसी पर एक खुली पुस्तक पेट के बल औंधी पड़ी है। उन्होंने चुपचाप खुले हुए द्वार के कपाट को, बिना कोई स्वर उत्पन्न किए, धीरे से बन्द कर दिया।

इतने में कोई बरतन पाइप-घर से झनझना उठा। आगे चलकर उनका अपना कमरा था, उसके बाद उसीसे लगा हुआ लीला का। एक बार मन में आया, 'अब थोड़ा विश्राम मैं भी कर लूं।' पर एक तो वर्माजी की मां की दुरवस्था का प्रभाव मन से न उतरा था। वे बारम्बार यही पूछ उठती थी, 'रमेश को कहीं चोट तो नहीं आई? वही मेरी गोद में था!'

वर्माजी हर बार उत्तर दे देते, 'तुम देख तो रही हो अम्मा, रमेश बाल-बाल बच गया है! वह यहीं पास खड़ा तुम्हारे पैर छूकर तुमसे आशीर्वाद मांग रहा है।'

लेकिन मां की गहरी गड्ढों में धंसी आंखों, सफेद बिखरे केशों और झुर्रियों से भरे बिना दांतों के पोपले मुंह से, यही शब्द निकलने लगते थे—यह रमेश नहीं है और तुम भी महेश नहीं हो! झूठे, पाजी, लुच्चे, आवारे! आंख मूंदकर गाड़ी चलाते हैं! और तू कहता है कि मैं आंख मूंदकर तेरा कहा मान लूं कि यह रमेश है और तू भी महेश है। मैंने सोचा था, जब रमेश बड़ा होगा तो मैं उसकी दुलहिन को अपने सोने के कड़े दूंगी। पर हाय राम! इस ज़माने को क्या हो गया?

इतने में डाक्टर ने आकर सबको कमरे से बाहर निकाल दिया था। उनको भी अपमानित होकर लौट आना पड़ा।

फिर रास्ते में मिल गए बाबू गिरधारीसहाय। हाल-चाल बतलाते-बतलाते खीझते हुए बोले, "क्या बतलाऊं सेठजी, बड़कू बिलकुल आवारा निकला। हफ्तों वह घर नहीं आता। आने पर मैं डांटता हूं, तो उलहना देता है कि तुम्हींने तो मुझे नहीं पढ़ने दिया। क्लास की किताबें तक

तो तुम मेरे लिए खरीद न पाते थे। ज़रूरी कपड़े न बनवा पाने की बात ही अलग है ! ऐसी हालत में जब कोई धन्धा नहीं लगता, तो क्या करूं, कैसे जीऊं ?"

प्रबोधबाबू सुनकर सन्न रह गए। "अब मैं आपसे क्या छिपाऊं !" सहायबाबू दयनीय बनकर बोले, "चोरी में पकड़े गए थे बरखुरदार। साल-भर बाद जो जेल से छूटे, तो जिसने पकड़वाया था, उसकी नाक काटकर लौटे हैं।"

प्रबोधबाबू बिना रुके बोल उठे, "यह कुछ बात हुई !" लेकिन सहायबाबू कहते गए, "सूट पहनते हैं और सदा डार्क चश्मा लगाकर चलते हैं।"

तब प्रबोधबाबू को कहना पड़ा, "इसकी शादी क्यों नहीं कर देते। बन्धन में डाल दोगे तो अपने-आप रास्ते पर आ जाएगा।"

सहायबाबू बोले, "लेकिन सेठजी, ऐसे लड़के की शादी हो कैसे सकती है ! मैं तो नहीं कर सकता। पर ऐसी हालत में अगर उसने कहीं विवाह कर लिया, तो उसकी बहू को घर के अन्दर पैर रखने से मना भी कैसे करूंगा। समझ में नहीं आता, क्या करूं। आप कोई मार्ग बताइए।" फलतः उन्हें कहना पड़ा, "मेरी राय आप नहीं मानेंगे, इसलिए कहना बेकार है।"

वे बोले, "कहिए, कहिए, कुछ तो कहिए। विश्वास रखिए, जो आप कहेंगे, मैं उसपर अवश्य विचार करूंगा।"

इसपर प्रबोधबाबू ने कहा, "उससे कह दीजिए—चुपचाप निकल जाओ घर से और फिर कभी शकल मत दिखाना। मैं समझूंगा, मैंने तुमको पैदा ही नहीं किया।"

प्रबोधबाबू की इस बात को सुनकर सहायबाबू अवसन्न हो उठे थे। अब वे स्वयं इस उलझन में हैं कि क्यों उन्होंने उनको ऐसा सुझाव दिया ! क्योंकि ज़ाहिर है—'ममता तू न गई मोरे मन से !'

प्रबोधबाबू रात में सो न पाए थे। सिर में दर्द था, शरीर थका

हुआ था और मस्तिष्क झनझना रहा था। रास्ते में एक-आध जगह अपने ही एक पैर से दूसरा पैर टकरा गया था। गिरते-गिरते बचे थे। आचमन के समय हाथ धोते-धोते एक हाथ का नाखून, दूसरे हाथ के अंगूठे के ऊपर इतना चुभ गया था कि खून निकल आया था। अब लीला के कमरे के द्वार पर पहुंचकर जो खड़े हुए तो देखा—अलमारी के नीचे पेस्ट्री का टुकड़ा लिए एक चुहिया उसे कुतरती हुई हंसती जान पड़ती है और एक मोटा चूहा उत्तर से दक्षिण भागा चला जा रहा है। द्वार पर पीठ की ओर छज्जे पर बैठी चिड़िया चूं-चूं बोल रही थी। और लीला लिहाफ़ से सिर ढके हुए चुपचाप लेटी थी। उसका एक हाथ पलंग की पाटी पर पड़ा हुआ था जिसकी पतली-गोरी अंगुलियां फर्श की ओर झुकी हुई थीं।

अब प्रबोधबाबू धीरे से अन्दर जा पहुंचे। अलमारी के पास जाकर देखा—ताला बन्द था। चाभियों का गुच्छा उनके पास न था। सोचा, वह तो लीला की तकिया के नीचे होगा। जगाना ठीक न समझकर, चुपचाप अपने कमरे में आकर पलंग पर बैठ गए। इतने में हरी ने आकर कहा, "बाबूजी, हिसाब लिखिएगा ?"

वे करवट बदलते हुए बोले, "उसीको लिखा देना।"

हरी ने पूछा, "चाय का वक्त हो गया, बनाकर ले आऊं ? बहूजी सो रही हैं और साहब अभी उठे हैं।"

प्रबोधबाबू बोले, "पानी चढ़ा दो और ज्योंही लीला जगे, त्योंही चाय बनाकर ले आना।"

हरी चला गया।

इतने में जमुनी ने आकर कहा, "बहूजी को ज्वर आ गया है। आपको बुला रही हैं।"

जमुनी लौट गई और प्रबोधबाबू विचार में पड़ गए।

कमलेश सोच रहा था—मैं यहां बेकार चला आया। एक तो राह-घाट का परिचय, दूसरे एक सद्गृहस्थ के घर अखण्ड-निर्विकार शान्ति में मेरा अकारण हस्तक्षेप। इस समय निर्मल भी मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा। लेकिन यह क्या बात है कि कोई मन पर छाता चला जा रहा है। प्रतीत होता है कि जिस मन से मुझे बढ़िया से बढ़िया, स्वादिष्ट और सुरभित भोजन कराया गया है, उसके भीतर कहीं कोई प्रच्छन्न आग्रह भी है।

लेकिन जाने दो इस बात को। मैंने सहज ही 'भाभी' कह दिया उन्हें, क्योंकि इसके सिवा और तो कोई नाता हो नहीं सकता, ठहर नहीं सकता।

इसपर वे मुस्करा उठीं। इस मुस्कान का अर्थ क्या हो सकता है? फिर विस्मय भी प्रकट किए बिना न मानी कि नाम तक नहीं बतलाया।

इस उपालम्भ के मर्म में क्या है? तब मैंने जो कह दिया, 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान—अरे कोई पूछता भी है!' तो हंस पड़ीं; बोलीं, 'अतिथि ही नहीं, आप तो देवर भी बन गए, फिर भी उलाहना बना रहा।' इस कथन में क्या कोई माया नहीं है? लेकिन इस प्रकार के कथन मुझे क्यों छू लेते हैं? लवंग अगर जीवित रहती, तो इस समय वह भी ऐसी ही होती।

कमलेश अब सिगरेट सुलगाकर कमरे में टहलने लगा। फिर उसे और भी एक स्मृति ने छू लिया।

संदीप का नया-नया विवाह हुआ था। मुश्किल से दस दिन हुए होंगे। अपने प्रति वह कुछ ऐसा अभिन्न था कि प्रेरणा की कोई भी बात छिपा न सकता था। एक दिन उसने बतलाया, 'भाई तुम्हारी कविताओं की हमारे यहां बड़ी चर्चा होती है। सुनते-सुनते ऊब उठा हूं। सबसे बड़ी समस्या यह है कि मैं तुम्हारी कविता को इतना उच्च स्तर क्यों

नहीं दे पाया, जबकि तुम्हारे इतने निकट हूं। पर वह जिसने तुमको कभी निकट से देखा तक नहीं, तुम्हारी सूक्ष्म मर्म वाणी को समझ कैसे लेती है !'

'यह भी एक रोग है कि किसीने प्रशंसा में दो शब्द कह दिए, तो हम झट से पुलकित हो उठे और सोचने लगे कि उससे मिला जाए, तो कैसा हो ?' मन की यह बात मैं कहने न पाया था कि संदीप ने कह दिया था, '‥ आज तो तुमको मेरे घर चलना ही पड़ेगा कमलेश।'

तब मुझे उसके घर जाना ही पड़ा।—एक-एक कर सारी बातें उसे स्मरण आ रही थीं।

द्वार के भीतर पैर रख ही रहा था कि एक बिल्ली मुंह में चूहा दबाए भागती हुई दिखाई पड़ी। एक प्रकार का नशा जो सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते मन पर छाया हुआ था, बात की बात में उतर गया। क्योंकि वह सोचने लगा था, 'सबका अन्त यही होता है।' क्वांर के बादलों की श्याम घटाएं जो कल्पना के आकाश पर उड़ती जा रही थीं, विलुप्त हो गईं। सघन कान्तार में, बिलकुल सामने से जैसे किसी मृगी को सिंह ने नोच डाला हो। पानी से भरे खेत में खड़ी सारस की जोड़ी में से मादा को किसी शिकारी की गोली जा लगी हो। पहले तो उड गया हो पर फिर लौटकर उसपर गरदन झुकाए नर वहीं खड़ा आंसू बहा रहा हो। लेकिन फिर ध्यान आया कि क्या यह सम्पूर्ण जगत् ही 'पहले अपनी रक्षा, अपने सुख-वैभव' के सिद्धान्त पर स्थिर है ?

लेकिन किसी भांति मन को संतोष न होता था।

संदीप ने मुझे ड्राइंग-रूम में बिठा दिया था और वह स्वयं भीतर चला गया था।

मुंह में चूहा दाबे द्वार से निकलती हुई बिल्ली, अब भी जैसे सामने दिखाई पड़ रही थी। पांच मिनट लगे होंगे कि संदीप अपनी नव-विवाहिता पत्नी को लेकर वहां आ पहुंचा। उत्तरप्रदेश के मध्य भाग में रहने के कारण सलवार पहने हुए कोई नारी मुझे कभी सुहावनी नहीं

लगी। लेकिन उस समय वह सुनहले रंग की चमकती हुई कलंगीवाली नागरा जूतियों में बड़ी मोहक प्रतीत हुई थी। तब उसकी सलवार भी मुझे कोई खास बुरी नहीं जान पड़ी थी। फिर मुख पर जो दृष्टि गई तो लगा कि आना बेकार नहीं हुआ। नयनों की कोर और पलकों के छोर पर बहुत बारीक काजल की धार और होंठों पर लिप्स्टिक की लाली। बदन पर काले रंग की एक शाल, केशों की वेणी के जालदार काले आवरण में सफेद मोतिया लहरें। सामने आते ही हाथ जोड़कर 'नमस्ते' किया और बोली, 'बैठिए न ? आप तो खड़े हो गए।' मैं जब पुनः उसी कुर्सी पर बैठ गया तो दोनों प्राणी सोफे को दोनों ओर घेरकर बैठ गए।

संदीप बोला, 'संयोग की बात, बी० ए० की परीक्षा देने के बाद, शायद एक ही सप्ताह के भीतर, विवाह की तारीख पड़ी थी; क्योंकि पहले से सब कुछ तय हो गया था। अलबत्ता इन्हें मैं देख नहीं पाया था। पर बहनोई साहब ने पूरा आश्वासन देते हुए कहा था, बस, इतना जान लो कि सुन्दरता में तुम्हारी बहिन से किसी भांति कम नहीं, बल्कि अधिक ही है। —और मेरी बहिन को तो तुमने देखा है कमलेश ? तो बस, मिनटों में सब कुछ तय हो गया।'

इतने में वह थोड़ी मुस्कराई और बोली, 'नहीं, असल बात यह हुई कि जब घर में बात उठी और भाभी ने अन्य बातों के साथ इस बात का भी ज़िक्र किया कि वही, जो कवि रमानाथ के साथ अमुक कवि-सम्मेलन में आये थे, तो जाने कैसे मेरे मुंह से निकल गया, हां-हां, मैंने उनको देखा है। मुझे इस बात का ध्यान ही न रहा कि जिस प्रसंग की बातें हो रही हैं उसका सबसे अधिक सम्बन्ध मेरे ही साथ है ! तब क्षण-भर बाद अपनी ही बात पर चौंककर मैं भीतर भाग गई थी।"

संदीप बोला, 'फिर ब्याह के समय तो कुछ खास बात हुई नहीं, लेकिन जब हम लोग यहां आ गए और सवाल उठा कि पार्टी के लिए किन-किन मित्रों को बुलाना है, तब सबसे पहले तुम्हारा नाम आना

स्वाभाविक था। होते-करते एक दिन इसके हाथ में तुम्हारा कविता-संग्रह पड़ गया। इस प्रकार, एक अरसे के बाद आपको ले आने में मुझे यह सफलता मिल पाई है।'

एकाएक मैंने कह दिया, 'लेकिन तुमने भाभीजी का नाम नहीं बतलाया संदीप ?'

संदीप का इतना कहना था कि वह हंसती हुई बोली, "नाम तो वैसे मेरा जगत्तारिणी है, पर घर के लोग 'तारिणी' ही कहते हैं।"

संदीप के घर का एक-एक चित्र कमलेश के सामने से आ-जा रहा था। इतने में हरी ने आकर कहा, "आपको बाबू साहब बुला रहे हैं।"

कमलेश प्रबोधबाबू के पास जा पहुंचा। लीला सोफे पर स्वामी के बाईं ओर बैठी हुई थी। कमलेश जब संलग्न कुर्सी पर बैठ गया, तो चाय डालती हुई लीला बोली, "आपको इस समय नींद अच्छी आई।"

कमलेश को यह सोचकर थोड़ा विस्मय हुआ कि इस बात के धरातल में ध्वनि क्या हो सकती है। फिर भी उसने जवाब दिया, "हां, आ तो गई थोड़ी-सी।"

तभी प्रबोधबाबू बोले, "लेकिन इसको नींद नहीं आई, बल्कि कुछ टेम्परेचर हो आया है।"

लीला कुछ हंसती-हंसती मोती-से दांत झलकाती हुई बोली, "ज़रा तबियत से नहा लिया था। शायद इसलिए जुकाम हो गया है।"

प्रबोधबाबू बोले, "मैं बुखार से उतना नहीं घबराता, जितना इस जुकाम से।"

तभी चाय का कप लीला ने कमलेश के सामने बढ़ाते हुए कह दिया, "हम लोग शाकाहारी हैं, इसलिए स्वागत-सत्कार में कमी रह जाना स्वाभाविक है।"

मुस्कराता हुआ कमलेश बोल उठा, "शाकाहारी तो मैं भी हूं।"

दोनों आश्चर्य में पड़ गए। लीला पलकें उठाती हुई बोली, "मगर अण्डे तो आप लेते हैं।"

"नहीं तो। आपने देखा नहीं, मैंने तुरन्त चायवाले को मना कर दिया था ?"

"इसका मतलब यह भी हो सकता है कि अगर ये 'ना' न कहते तो आपको भी कोई आपत्ति न होती।"

"क्यों ? क्या इसका मतलब यह नहीं होता कि मैं केवल आप लोगों के लिए मंगवाना चाहता था।" उसकी इस बात पर दोनों हंस पड़े। फिर प्रबोधबाबू बोले, "यह कुछ बात हुई ! मगर फिर प्रश्न उठता है कि संगति के प्रभाव से क्या हम सदा बचे रह सकते हैं ?"

"क्यों नहीं ?"

"क्योंकि संगति से भी अभावों का भान होता है और इतना तो आप मानेंगे कि कोई न कोई कमी जीवन में बनी ही रहती है।"

कमलेश को ध्यान आ गया, 'इसी आशय की मेरी एक कविता पर तारिणी ने कहा था—आप कहते हैं कि यह अखण्ड सत्य है। कोई न कोई अभाव तो रहेगा ही। पर मेरा अनुभव यह है कि उस नये अभाव का जन्म भी तब होता है, जब पुराना अभाव पूर्ण हो जाता है।'

कमलेश सोच रहा था, 'इसपर जब मैंने कहा—हां, ऐसा भी हो सकता है तो उसने उत्तर दिया था—क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि एक अभाव की सम्पूर्ति ही नये अभाव को जन्म देती है ?'

लीला बोली, "आप तो फिर कुछ सोचने लगे ?"

चाय की चुस्की लेते हुए कमलेश ने कह दिया, "चिन्तन कभी मन से परे नहीं होता। क्योंकि सोचता हूं, आपने इतना क्यों नहाया कि जुकाम हो गया ?"

"ऊं-ह, मामूली बात है। मगर चाय के साथ आप कुछ ले नहीं रहे हैं ?" लीला ने पूछा।

प्रबोधबाबू उठे और दरवाज़े तक जाकर बोले, "हरी, ज़रा आज का अखबार तो लाना।" और फिर उसी दिन का हिन्दी दैनिक लिए हुए वे अपने स्थान आ आकर बैठ गए।

कमलेश ने उत्तर दिया, "बहुत काफी पहले ही खा चुका हूं। इसलिए इस समय कुछ खाने की तबियत नहीं हो रही।"

प्रबोध बाबू दैनिक पत्र देखते हुए बोले, "चाय-गोष्ठी की सफलता पर दृष्टि डालें, तो यह भी एक अभाव है।"

कमलेश का उत्तर था, "ऐसा अभाव, जिसे एक परिपूर्ति ने उत्पन्न किया है।"

कथन के साथ उसको ध्यान आ रहा था, तारिणी ने कहा था, 'इसका तो मतलब यह हुआ कि हम अगर एक अभाव की पूर्ति न करें, तो दूसरा उत्पन्न ही न हो।' और संदीप तब बोल उठा था, 'लेकिन कोई अभाव अगर बना ही रहता है तो फिर किसी न किसी दिन विस्फोट का रूप धारण किए बिना नहीं मानता। इसके सिवा ऐसा भी होता है कि कोई-कोई सम्पूर्ति पुनरावर्तन चाहती है। अर्थात् अभाव जीवन का एक चिरंतन रूप है।"

इतने में प्रस्तुत प्रसंग से छुट्टी-सी लेती हुई लीला बोली, "वैसे, अब आपका प्रोग्राम क्या है?"

कमलेश ने उत्तर दिया, "अब पांच बज रहे हैं और मैं सोचता हूं, अब मुझे चला जाना चाहिए।"

प्रबोधबाबू ने पूछा, "कहां?"

कमलेश ने कहा, "आपको बतलाया तो था कि यहां मेरे कई मित्र रहते हैं। उनमें एक निर्मल भी है। यहीं सेंट्रल सेक्रेटेरियट में काम करता और सब्ज़ीमण्डी में रहता है।"

"सब्ज़ीमण्डी तो काफी दूर है।" लीला बोली

"संयोग किसी दूरी पर विश्वास नहीं करता।" कमलेश ने उत्तर दिया।

तब प्रबोधबाबू पूछ बैठे, "और वियोग?"

"वियोग दूरी मेट नहीं सकता।" कमलेश निर्विकार होकर बोला, "यह एक संयोग था जो आपसे इतना परिचय हो गया। लेकिन कोई-

कोई वियोग चिर मिलन का हेतु बन जाता है। अपनी आस्था प्रमाणित करने के लिए कोई-कोई व्यक्ति अपना सर्वस्व तक उत्सर्ग कर डालते हैं।"

पता नहीं क्यों मूल विषय से अलग हटकर प्रबोधबाबू बोले, "लेकिन परिचय तो अभी काफी हुआ नहीं, इसलिए अच्छा हो कि हम लोग ज़रा कनॉट प्लेस घूम आएं।"

इतने में पड़ोस के वर्माबाबू का लड़का धर्मपाल मुंह में टाफी डाले आ पहुंचा और बोला, "आपको बाबू बुला रहे हैं।"

चाय यों भी समाप्त हो गई थी। पकौड़ी तथा मेवा-बिस्कुट ज्यों के त्यों रखे रह गए। लीला अपने कमरे में चली गई। प्रबोधबाबू यह कहते हुए उठ खड़े हुए "ओः, मुझे खयाल ही नहीं था। अच्छा, मैं तो जाता हूं। हरी ज़रा कोट लाना।" फिर जल्दी में अपने कमरे की ओर जाते-जाते एकाएक रुक गए और कहने लगे, "दो घटे से पहले तो लौटना होगा नहीं। इस बीच में आप अगर सब्ज़ीमण्डी गए भी तो, मालूम नहीं कब तक लौटें। या हो सकता है न भी लौटें। इसलिए यही अच्छा होगा कि आप इस समय यहीं आराम करें। अब तो रेडियो का भी टाइम हो आया।" फिर घड़ी देखते हुए कहने लगे, "यों मैं चेष्टा करूंगा कि सात बजे तक आ जाऊं। अब साढ़े पांच बज रहे हैं।" फिर चलते-चलते पीठ फेरते लीला के कमरे में जाते हुए कहते गए, "लीला, तुम सब देखना।"

उनका इतना कहना था, लीला उठ खड़ी हुई और प्रबोधबाबू के साथ-साथ चल दी। फिर छज्जे पर ही एक जगह रुककर धीरे से कहने लगी, "मैं तुम्हारे साथ चलूं तो कैसा हो ?"

"नहीं, नहीं।" प्रबोधबाबू बोले, "मैं तुमको अपने साथ नहीं ले जा सकता। तुमको पता नहीं, वर्माजी की मां पागल हो गई हैं !"

"तो क्या हुआ !"

"हुआ कैसे नहीं ! तुमको टेम्परेचर जो हो आया है। ऐसी दशा में बाहर घूमना ?…बचपना मत दिखाओ। सम्भव है, मुझको ऑटो-रिक्शा पर जाना पड़े।"

"तो फिर इन्हींको सब्जीमण्डी जाने दीजिए ? बेकार क्यों रोकते हैं ?"

प्रबोधबाबू का उत्तर था, "क्या बात करती हो ! छिः !!" जैसे वे कहना चाहते थे, 'तुम कमलेश को पशु समझती हो ! तुम्हारी दृष्टि में वह असभ्य है, बर्बर ! छिः !'

लीला चुप रह गई ।

प्रबोधबाबू जब चले गए, तब उसने दोनों हाथों से अपना मुंह ढक लिया । तब तक अवसर पाकर कमलेश बिना किसीको कोई सूचना दिए चुपचाप चला गया था ।

३

कुछ देर बाद, आपादकण्ठ वस्त्र बदलकर, आंखों में सुरमा, होठों पर लिप्स्टिक की लाली चढ़ाकर लीला उसी ओर चल दी, जिस ओर कमलेश ठहरा हुआ था ।

कमलेश को कमरे में न पाकर उसने जमुनी से पूछा, "साहब कहां गए ?"

जमुनी बोली, "बहूजी, मुझे नहीं मालूम। मैं तो काम में लगी थी ।"

तभी हरी बोल उठा, "साहब चले गए । कहते थे—कल आऊंगा ।"

आज बड़े उत्साह से लीला ने नये ढंग की कंचुकी धारण की थी । अलमारी में जड़े लम्बे दर्पण में अपने यौवन-गर्वित रूप-सौन्दर्य की अभिनव झलक में एक बार तो उसने अंगड़ाई लेकर भी देखा था। जब उसने हरी से सुना कि साहब चले गए तो उसका नशा उतर गया। अपने-आपको तुच्छ और अपदार्थ समझकर वह मन ही मन नाना प्रकार की बातें सोचती रही । —'तो क्या उनको किसी तरह यह मालूम हो गया कि मैंने इनसे ऐसा-ऐसा कहा था ? क्या वे परोक्ष में कही हुई बातें जान लेते हैं ? ऐसा ही है तो वे अपने मन में क्या कहते होंगे !'

प्रबोधबाबू जब लौटकर आए, तो उन्होंने देखा, लीला पलंग पर अनमनी पड़ी हुई है ।

उसके सिर पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "कमलेश बाबू आखिर चले ही गए ?"

अन्यमनस्क लीला उठकर बैठ गई। बोली, "चले गए तो क्या

करूं ! मैंने तो उनसे चले जाने के लिए कहा नहीं । फिर ऐसे आदमी का भरोसा क्या, जो बिना सूचना दिए चला जाए ! मगर तुमको त्यागी-वैरागी, आधे-तिहाई पागल और सनकी आदमी ही बहुत नज़दीकी और आत्मीय लगते हैं ! अब जाओ, खोजो उनको । क्योंकि कौन जाने उनके बिना आए खाना भी पूरा खाओ न खाओ, और फिर नींद भी पूरी आए न आए !"

"यह तुम क्या कह रही हो लीला ! जिनको तुम आधे-तिहाई पागल और सनकी कह रही हो, समाज जिनका नित्य उपहास करता रहता है, वे बिगड़ेदिल तरुण लोग ही वास्तव में सभ्यता की गतिविधि में एक मोड़ देकर उसमें नयी उमंग और प्रेरणा का संचार करते हैं । मुझको बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि तुम्हारी दृष्टि में वह व्यक्ति इतना महत्त्वहीन, अपदार्थ कैसे हो जाता है, जिसको मैं आदर और सम्मान की दृष्टि से देखता हूं ।"

"क्योंकि तुम्हारा ज्ञान, अनुभव और विचार तुम्हारे साथ है, मेरा मेरे साथ । इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? तुमको तो वही व्यक्ति आत्मीय और स्वजन जान पड़ता है जो बार-बार आग्रह करने पर भी अपनी ही बात पर जमा रहता है, अपनी ही इच्छा को अधिक महत्त्व देता है और तुम्हारे अनुरोध की कतई परवाह नहीं करता । लेकिन मैं तो ऐसी नहीं हूं । मेरी अपनी एक अलग मर्यादा और सीमा है । मान लो, कोई व्यक्ति बड़ा विचारक या विद्वान ही है, इसीलिए मैं उसके साथ अपना परिचय और सम्पर्क बढ़ा लूं, तुम समझते हो, यह बात हमारे जीवन और भविष्य के लिए बहुत कल्याणकारी होगी ?"

जमुनी स्टोव जलाकर सब्ज़ी फिर से गरम करने लगी थी । और लीला थालियों में खाना परोस रही थी ।

'इसकी बात भी सही है, अपनी जगह यह ठीक ही लगती है ।' सोचते हुए प्रबोधबाबू ऊपरी कपड़े उतारते हुए बोले, "खैर कोई बात नहीं । आज नहीं तो कल आएंगे । आदमी मुझे बड़ा मनस्वी लगता है ।

ऐसा खरा व्यक्ति अगर व्यवसाय में साझीदार बन जाए, तो कितना अच्छा हो ! इसी खयाल से मैं इसके साथ अपना सम्पर्क बढ़ाना चाहता था। मगर तुम कभी-कभी मुझे गलत समझ बैठती हो। यही सोचकर मैं चिन्ता में पड़ जाता हूं।"

"गलत मैं नहीं सोचती, बल्कि तुम सोचते हो। आज ही वे जाते समय अपने सूटकेस को बन्द किए बिना ही चले गए हैं। गुच्छा ताले के सूराख में लटक रहा है। ऐसे आत्मग्रस्त महापुरुष को साझीदार बनाने से व्यवसाय में एकाएक कितनी बड़ी प्रगति आ जाएगी, इसकी कल्पना तुम भले ही न कर सको, लेकिन मैं कर सकती हूं।"

बातें चलती जाती थीं, साथ में भोजन भी होता जाता था। लीला की इस बात पर प्रबोधबाबू मुस्कराते हुए बोले, "यह कुछ बात हुई !" फिर एकाएक उनका ध्यान लीला के शृंगार-प्रसाधन की ओर चला गया। बोले, "टेबिल पर खाना न खाने से वस्त्र गन्दे जल्दी हो जाते हैं। अब से हम इसी प्रकार टेबिल पर खाया करेंगे।"

लीला को स्वामी की यह बात अच्छी नहीं लगी। बल्कि कुछ ऐसा हुआ कि भीतर ही भीतर एक वितृष्णा-सी जाग उठी, 'यह तो नहीं कहा कि यह साड़ी, ब्लाउज़ या कंचुकी तुम्हारे बदन पर अच्छी लगती है ! वस्त्रों के गन्दे न होने की ही फिकर ज्यादा रहती है। रूप-सौन्दर्य की चर्चा इनके लिए बातचीत का विषय ही नहीं बनती कभी !'

खाना खाने के बाद प्रबोधबाबू पान खाते थे। अकसर लीला ही उनको ये पान देने आती थी। आज उसने हरी के हाथ ही पान भिजवा दिए।

दिन का दैनिक पत्र वे प्रायः तभी पढ़ते, जब सारे कार्यों से छुट्टी पा जाते। आज वे पलंग पर लेटे-लेटे जब दैनिक पत्र पढ़ने लगे, तब उन्होंने हरी के हाथ से पान ले लिए। सोचा, 'लीला किसी काम में लगी होगी।'

सोने से पूर्व हरी गरम दूध पिलाने आता था। आज जब वह आया,

तो उसने देखा, दैनिक पत्र कम्बल पर पड़ा हुआ है। वे करवट लेकर सो गए हैं। तब दूध का गिलास लौटाते हुए उसने टेबिल-बल्ब बुझाकर स्लीपिंग बल्ब जलाते हुए कपाट बन्द कर दिए।

लीला थोड़ी देर तक तो कहानी की एक पत्रिका पढ़ती रही। फिर उसे भी नींद आने लगी।

तीसरे दिन जब कमलेश रात को आया तो प्रबोधबाबू उसे द्वार पर ही मिल गए थे। यद्यपि वे जल्दी में थे, फिर भी उन्होंने आगे बढ़ते हुए कह दिया, "आप कल नहीं आए। मैं दिन-भर आपकी प्रतीक्षा करता रहा। खैर, आज तो रहिएगा! मैं अभी थोड़ी देर में आता हूं। इस वक्त ज़रा जल्दी में हूं।"

कमलेश उत्तर में अपने तुरन्त चले जाने की बात कह न सका। तब तक प्रबोधबाबू चले गए थे। कमलेश की कुछ ऐसी आदत पड़ गई थी कि किसी निश्चय में सहसा विघ्न पड़ जाने पर वह प्रायः यही सोचने लगता कि प्रकृति हमारे कार्यक्रम के अनुकूल नहीं है।

जब वह ऊपर पहुंचा, तो जमुनी सामने आकर बोली, "बाबू घर में नहीं हैं। वे अभी-अभी बाहर गए हैं।"

"मगर भाभी तो हैं।" कमलेश बोला, "मैं अपना असबाब लेने आया हूं।"

तब जमुनी यह कहती हुई चल दी, "मैं बहूजी को बुलाती हूं।" और फिर एक मिनट बाद आकर बोली, "आप बैठिए, बहूजी अभी आती हैं।"

कमलेश अन्दर जा पहुंचा। आज इस कमरे के वातावरण में कुछ नयापन जान पड़ा। पहले फर्श स्वच्छ, चिकना और खुला हुआ था। अब उसपर नारियल की जटाओं का टाट और ऊपर से दरी बिछी हुई थी।

बीच में एक गोल टेबिल और उसके आसपास चार कुरसियां। टेबिल पर फूलदान लगा था। आसपास रंग-बिरंगे फूल थे, उनके बीच में एक बड़ा गुलाब का फूल था। हर दरवाज़े पर पापोश पड़े हुए थे। कमरे के चारों कोनों में ऊंचे स्टूलों पर मूर्तियां रखी थीं, जो एक गेंद खेलते हुए बालक की थीं, और वह गेंद, फेंकने की प्रतिक्रिया में, सिर के ऊपर तक आ गई थी। उसी गेंद में एक छिद्र था जिसमें एकसाथ कई अगरबत्तियां खोंस देने का संकेत था। पलंग बदल दिया गया था, जिसमें मसहरी लगी हुई थी। छज्जे पर बारीक तारों के पिंजड़े में लाल मुनियां का एक जोड़ा बैठा हुआ था। पहले कमलेश का सूटकेस और बैंडिंग पलंग के नीचे रख दिया गया था, पर अब वह एक बड़ी अलमारी के नीचे के खाने में रखा था; जिसका पता उसे तब चला, जब हरी से उसने पूछा कि मेरा बिस्तर कहां है ? टेबिल पर एक मासिक पत्र पड़ा हुआ था। कमलेश ने उसका प्रथम पृष्ठ जो खोला, तो उसने देखा—कोरे कागज़ में लिखी हुई कटी-पिटी एक कविता रखी है। उसे कुछ सन्देह हुआ, तब वह उसे ध्यान से पढ़ने लगा। उसके शब्द थे :

दूर से, दूर से।
मुझे—
मेरे किसी वस्त्र के छोर को, अंचल को,
निकट की दूरी को, पलंग की पाटी को,
कुरसी के हत्थे और कक्ष के कपाट को
छूना मत।
परम मर्यादाशील घर और समाज की
एक नववधू हूं मैं।
लेकिन मुझे तुमसे कुछ कहना है।
अब तक मैंने जिसे किसीसे भी
कह नहीं पाया है

होगा कहना, मुझसे क्या मतलब है ?

मैंने बतलाया न ?
मेरे निकट आने का जो अर्थ है,
वह अब तुम्हारे लिए व्यर्थ है।
मैं अब कुमारी जो नहीं हूं
नारी हूं नारी,
स्वामी भी हैं मेरे
मैं उन्हींके परों से उड़ती हूं।
लेकिन मैं उनके लिए किन्तु हूं।
जानती हूं,
तुम विश्वास नहीं करोगे।
बात ही ऐसी है, क्या बताऊं !
बहुतेरी बातें हैं।
उन्हें मैं कह नहीं पाती हूं।
डरती जो बहुत हूं।
लाज का प्रश्न है।
कम्पित मन, विकल प्राण, करुण नयन
सजल गान उठते हैं।
रन्ध्र-रन्ध्र, लोम-लोम, ज्वलनशील रहते हैं।
मेरा यह तन, वह भट्ठी है,
रात-दिन जो सुलगी हुई रहती है।
तुम मेरे पास कहीं खड़े मत हो जाना।
तुम्हारे अनचाहे झुलस जाने का मुझे भय लगता है !

दूर से, दूर से।

किसी दिन रात को
जब बारह बजते हैं,
चांदनी सिर पर आ जाती है।
किरणों से दूध की धारें फूटती हैं,
तारे टिमटिमाते हैं
मन्द पवन डोलता है,
और सौरभ बोलता है।
सृष्टि सारी तन्द्रालस होती है,
गायें जुगाली करती हैं,
चुकुर-चुकुर बच्चे स्तन्य-पान करते हैं,
और कोयल कूकती है।
तब मैं आंसू बन जाती हूं,
उस विवश नारी का,
जो ऊपर से वधू
लेकिन भीतर से विधवा है।
सुलगी हुई लाल-लाल अग्नि की भट्ठी में
आंसू जब धार बन गिरते हैं, पड़ते हैं,
तभी उससे एक स्वर फूटता है—
और धुआं उठता है।
कौन उसे सुनता है ?
कौन उसे देखता है ?—
तुम भी उस धुएं को देखना मत,
छूना मत।
पलकों, बरौनियों के
हाय, झुलस जाने की पूरी आशंका है !
दूर से……दूर से…

कविता समाप्त करते-करते उसे ध्यान हो आया, 'यह कविता तो मैंने ही लिखी थी कभी। छापने को कहीं भेजी न थी। फिर जाने कहां खो गई। बहुत खोजा, पर कहीं मिली नहीं। बात आई-गई हो गई। अच्छा, तो मेरा सूटकेस खोला गया है। उसके सब कागज़-पत्र उल्टे गए हैं। लीला इस मैगज़ीन को पढ़ते-पढ़ते भूल से यहीं छोड़ गई है। उसने इस कविता को अवश्य पढ़ा होगा। देखूं, शायद सूटकेस खुला रह गया हो।'

उसने पैंट की जेब में हाथ डाला तो देखा—चाभियों का गुच्छा ही नदारद है! तब भौंहें सिकोड़कर वह सोचने लगा—चाभियों का गुच्छा मैंने कहां रखा है? अलमारी खोलकर देखा, तो नीचे के खाने में बन्द सूटकेस रखा हुआ था।

अब घूम-फिरकर एक ही बात उसके भीतर अटक जाती थी कि जब-जब प्रबोधबाबू चले जाते होंगे, जब अकेले में लीला का मन नहीं लगता होगा, तब उसको ऐसी ही खुराफात सूझती होगी।

क्षण-भर बाद, उसने फिर सोचा, 'मैं लीला का कौन होता हूं। भाभी कह देने-मात्र से कोई नारी भाभी नहीं हो जाती।'

तब उसे ध्यान हो आया, 'तारिणी ने कहा था—अगर हम एक अभाव की पूर्ति न करें तो हो सकता है, दूसरा उत्पन्न ही न हो।—ना, एक अभाव सौ दुर्भावों को जन्म देता है' फिर सोचा, 'हो सकता है, अकेले में मेरे निकट आना लीला पसन्द न करे। लेकिन फिर उसके इस कथन का क्या अर्थ होता है कि आपको पहले ही सोच लेना था।—ऊंह, बात पुरानी हो गई। पर यह बात तो नई है कि मेरा सूटकेस खोला गया है, उसके कागज़-पत्र उल्टे गए हैं। तो यह कविता ··· अवश्य पढ़ी गई होगी। लेकिन पुरानी हो जाने के बाद किसी-किसी बात का महत्त्व बढ़ भी जाता है। नई बात होती तो मेरा असबाब नीचे पहुंचा दिया गया होता!'

इतने में जमुनी उस कमरे के द्वार पर आकर लौट गई।

तब बिना कुछ अन्यथा सोचे, वह छज्जे पर आकर बोल उठा,

हरीऽ ।"

हरी एक सिल पर उड़द की धुली हुई दाल पीस रहा था। हाथ साफ़-कर वह तुरन्त कमलेश के सामने आकर बोला, "हुकुम ।"

कमलेश ने निस्संकोच कह दिया, "ज़रा बहूजी को बुलाना ।"

अब लीला ने अपना पिछड़ा हुआ बुनाई का काम शुरू कर दिया था। जमुनी उसे बतला गई थी कि साहब चुपचाप बैठे कुछ पढ़ रहे हैं। बुना हुआ अंश, ऊन की लच्छी और दोनों सलाइयां ज्यों की त्यों लिए हुए लीला उस कमरे की ओर चल दी—जहां कमलेश बैठा हुआ था। उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। बारम्बार एक ही प्रश्न उसके मन में उठ रहा था, 'कमलेश ने मुझे क्यों बुलाया है ?' एक-एक पैर आगे रखती हुई वह सोचने लगती थी, 'मैं कहां जा रही हूं ?'

अन्त में जब वह कमलेश के सामने पहुंची, तो द्वार पर ही ठिठककर खड़ी हो गई और बोली, "आपने मुझे बुलाया है ?"

लीला ने बुनाई का कार्य अब भी बन्द नहीं किया था। उसकी नत-मुखी दृष्टि को ध्यान से देखकर कमलेश ने उत्तर दिया, "हां। मेरी चाभियों का गुच्छा ?"

लीला हंस पड़ी। बोली, "आप उसको अपने सूटकेस के ताले में लगा हुआ छोड़ गए थे। भाग जाने की बहुत जल्दी थी न !"

"बात यह है भाभी, कि अगर मैं न जाता, तो मेरा मित्र निर्मल बहुत परेशान होता। और इतना तो आप मानेंगी कि आश्वासन दिया जाए, तो फिर उसे पूरा ही होना चाहिए ।"

"कहते तो आप ठीक ही हैं ।" एक निश्वास को दबाती हुई-सी लीला बोली।

सहसा लीला को एक झटका-सा लगा। क्योंकि ऊन का गोला और सलाइयां हाथ से छूटकर फर्श पर गिर पड़ीं। वह उसे झुककर उठाने लगी। उसके झुकने की छवि-माधुरी को नयनों में भरकर एक बार कमलेश ने अपनी पलकें बन्द कर लीं। यहां तक कि लीला बुनाई की

सामग्री उठाकर जब सीधी हुई, तो उसने उसे इसी अवस्था में देख भी लिया। आश्चर्य तो हुआ, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। जैकेट की जेब से चाभियों का गुच्छा निकालकर, भीतर आते-आते उसके हाथ में दे दिया।

कमलेश बोला, "मैं अब जा रहा हूं। क्योंकि हर हालत में जाना तो है ही। भाई साहब मुझे नीचे मिले थे। पर वे इतनी जल्दी में थे कि मैं उनसे अपने जाने की अनुमति नहीं ले सका। तब मैंने सोचा, भाभी से ही पूछ लूं।"

कमलेश ने लक्ष्य किया, 'भाभी को बात करने की भी फुरसत नहीं है, क्योंकि बुनाई का काम अधिक आवश्यक है।'

एक बार पलकें ऊपर उठाकर फिर तुरन्त गिराते हुए लीला ने उत्तर दिया, "अनुमति लेने की ज़रूरत तो परसों भी थी। फिर भी चोर की भांति चुपचाप चले गए थे।"

'अत्यधिक मोह, असंगत उपालम्भ और अतिरंजित समादर से भरी बातें किसी न किसी रहस्य की ओर खींच ले जाती हैं। और किसी मनीषी का वचन है कि उनपर ध्यान नहीं देना चाहिए।' मन ही मन सोचता हुआ कमलेश कोई उत्तर दिए बिना अपना होलडाल अलमारी से निकालने लगा। लीला चुपचाप यथावत् स्थिर बनी रही। पर जब उसे प्रतीत हुआ कि अब ये चले ही जाएंगे, तब वह दो कदम आगे बढ़कर कमलेश के पीछे जाकर बोली, "सुनिए।"

सहसा कमलेश उठकर खड़ा हो गया और बोला, "कहिए।"

लीला कुछ सोचने लगी।

कमलेश ने पैंट की जेब से एक केस निकालकर उससे सिगरेट निकाली, उसे मैच बाक्स के ऊपर ठोकता हुआ बोला, "हां, अब कहिए।"

लीला अब भी बुनाई करती जा रही थी। उसकी पलकें विनत थीं। सलाइयां चलती जा रही थीं और उनके साथ अंगुलियां भी मशीन की भांति बदलती जा रही थीं। तब एक बार पलकें पुनः ऊपर उठाकर उसने

कह दिया, "आपने यह कविता किसी अनुभूति पर लिखी होगी।"

सिगरेट जलाकर एक कश लेते-लेते निर्विकार चित्त से कमलेश ने उत्तर दिया, "अब कुछ याद नहीं रहा। हो सकता है, किसीको देखकर ही अपनी समवेदना को एक रूप देने की चेष्टा की हो।"

"सहानुभूति का कोई व्यावहारिक रूप ग्रहण करने की अपेक्षा यही रूप आपको अधिक भाता है?"

कमलेश जानता था कि जब यह कविता इसने पढ़ी है, तब यह उस-पर बात अवश्य करना चाहेगी। वह यह भी जानता था कि मेरी नोट-बुक में बहुतेरी कविताएं हैं। उनको भी सम्भव है, उसने पढ़ा हो। फिर एक इसी कविता पर बात करने का क्या अर्थ होता है?

सोचता हुआ वह मुस्कराने लगा। सिगरेट की राख ऐश-ट्रे में झाड़ दी। फिर उसके प्रश्न पर ध्यान न देकर उसने पूछा, "पहले यह बतलाइए कि कविता ने आपके मर्म को छू पाया या नहीं?"

लीला एकाएक गम्भीर हो उठी। उसकी पलकें झुक गईं। फिर यथार्थ पर आवरण डालते हुए उसने उत्तर दिया, "मैं क्या जानूं, मर्म कहां रहता है? फिर मान लो, कभी उसका बोध होता भी हो, तो उससे क्या होता है? मौखिक या शाब्दिक सहानुभूति अगर किसी कविता से मिलती भी हो, तो उसका मूल्य कितना है!"

कमलेश के हाथ की सिगरेट जलती जा रही थी। जब कभी राख लटकने लगती तब वह उसे ऐश-ट्रे में गिरा देता। उसने उत्तर दिया, "बात समझ में आ रही है। पर एक बार अच्छी तरह रो लेने के बाद कभी आपको अनुभव नहीं हुआ कि अब मन को कुछ शान्ति मिली है?"

"कैसे कह दूं कि नहीं हुआ।"

"तो आप मानती हैं कि शान्ति देनेवाली भावना आपको अपने अन्तस् से ही मिलती है?"

लीला विचार में पड़ गई। तभी सिगरेट के शेष रह गए टुकड़े को ऐश-ट्रे में डालते हुए कमलेश बोला, "रह गई उपयोगिता की बात, सो

सभी लोगों की सहानुभूति सक्रिय कैसे हो सकती है ? परिस्थितियों की प्रभुसत्ता भी तो कोई चीज़ होती है ।"

"तो परिस्थितियों को आप अधिक महत्त्व देते हैं ।"

कमलेश विचार में पड़ गया ।...पहले जलती हुई चिता फिर वह मुख ।...लवंग की मृत्यु उसके जीवन पर छा गई थी । फिर कालान्तर में तारिणी से उसका परिचय हुआ । परिचय ने सम्पर्क स्थापित किया । सम्पर्कों ने निकट की गैल में पैर रख दिया । फिर एक ऐसी रात आई...

सहसा उसकी आंखों की पलकें झपक गईं । लीला सम्भ्रम में पड़ गई, 'अरे ! यह क्या ? क्या ये किसीकी स्मृति में खो जाते हैं ? क्या ये भी मेरी भांति संसार के दुखी प्राणियों में हैं ?'

"कमलेशजी !—कमलेशजी !!" बाएं कन्धे को छूकर एक हलका-सा धक्का देती हुई लीला बोली । उस समय उसने यह नहीं सोचा कि वह कोई परपुरुष है । उसने यह भी नहीं सोचा कि इस समय उसको हिलाना उचित होगा या नहीं ।

कमलेश की आंखों से आंसू टपक रहे थे । रूमाल निकालने के लिए वह गरम कुरते के जेब की ओर हाथ बढ़ा ही रहा था कि लीला आगे बढ़ गई, अपने ही रूमाल से उसके आंसू पोंछते हुए अतिशय गम्भीर वाणी में उसने कह दिया, "मुझे आपके सम्बन्ध में ऐसा कुछ मालूम नहीं था !"

सहसा कमलेश के मुख पर एक सहज दीप्ति झलक उठी । मुस्कराते हुए वह बोला, "मैं आपके प्रश्न के अन्तस् को ही टटोल रहा था । परिस्थितियों को कोई टाल नहीं सकता । उनका यह प्राणान्तक प्रभाव जिस दिन निष्क्रिय बन जाएगा, उसी दिन आज का मानव मर जाएगा । सभ्यता ही नहीं, सृष्टि भी विधवा बन जाएगी ! मगर मुझे अब चला जाना चाहिए । आपकी शालीनता मुझे स्मरण आती रहेगी ।"

केवल शालीनता ! शब्दों पर लीला को संतोष नहीं हुआ । तब

वह बोली, "अच्छा, सच-सच बतलाइए, परसों आप मुझसे नाराज़ हो गए थे न ?"

कमलेश ने देखा—बुनने का काम बराबर जारी है। तब वह बोल उठा, "आप ही थीं जिन्होंने उस दिन सारे दिल्ली जंकशन के प्लैटफार्म पर कहा था, 'आपको पहले ही सोच लेना था।' अब मैं आपसे पूछता हूं, जो लोग पहले नहीं सोच पाते, क्या उनको बाद में सोचने का अधिकार नहीं रह जाता ?"

लीला ने एक कुरसी खींच ली। उसपर बैठते ही एकाएक बुनना बन्द कर मुसकराते हुए उत्तर दिया, "यह तो मैं नहीं कह सकती कि नहीं रह जाता। लेकिन इतना मैं जानती हूं कि···" कथन के बाद वह सोचने लगी, 'यह मैंने क्या कह दिया।' तब वह बोली, "किसी प्रेरणा से प्राप्त की हुई वस्तु को सहसा वापस कर देना क्या अर्थ रखता है ? फिर आप स्वयं सोच लें, क्या यह अच्छा होगा कि उनकी अनुपस्थिति में आप यहां से चले जाएं ?"

"तो आपका आग्रह है कि इस समय मैं न जाऊं ?"

निवेदिता लीला बोली, "हरएक बात कही नहीं जाती। और जो लोग बिना कहे समझ नहीं पाते, मैं जानती हूं, तुम उनमें से नहीं हो।"

आपकी की जगह 'तुम' शब्द का यह प्रयोग, कमलेश को बहुत प्यारा लगा। फिर भी उसने उत्तर दिया, "और आप उनमें से हैं, जो यह दिखाना चाहती हैं कि मुझे बहुत काम है। बात करने का भी अवकाश नहीं है।"

लीला उठकर खड़ी हो गई और द्वार की ओर मुंह करके जैसे मुस्कराहट छिपाती हुई बोली, "आपसे तो बात करना कठिन हो जाता है।" फिर छज्जे की ओर चल दी।

कमलेश ने लीला को जाने से रोका नहीं। लेकिन इतना कह दिया, "अच्छी बात है। आज मैं नहीं जाऊंगा।"

फिर उसे ध्यान हो आया, 'मैं कभी आप हूं और कभी तुम।'

इस बात पर वह आपसे आप हंस उठा। मन में तो आया, हाथ जोड़-कर कह डाले, 'मायाविनी, तुम धन्य हो!' पर लीला अब छज्जे पर पहुंच गई थी। तभी वह बोला, "एक बात और भाभी।"

लीला घूमकर, कमलेश की ओर उन्मुख होकर, जैसे उसकी आंखों में आंखें डालती हुई बोली, "कहिए।"

"वहां नहीं, यहां आ जाइए।"

"आप कहिए न।"

तब वह लीला के निकट जाकर बहुत धीरे से बोल उठा, "आपने मेरा सूटकेस खोला था?"

उसके इस प्रश्न पर लीला भीतर चली आई। कुछ बनती हुई-सी बोली, "आपसे किसने कहा?"

उसके सिर की साड़ी अब कंधे पर थी। पीठ पर आकर लटका हुआ भाग कमर के नीचे लहरा रहा था। ब्लाउज़ में वक्ष-प्रांत के संधि-भाग पर लटकता लाकेट दमकता प्रतीत होता था।

टेबिल पर रखे हुए मासिक पत्र की ओर संकेत करते हुए कमलेश ने कह दिया, "यह पत्रिका सूटकेस के अन्दर थी।"

"आप भी तो चाभियों के गुच्छे को ताले में लगा हुआ छोड़ गए थे। ऐसा ही था, तो उसे बन्द कर जाते। और गुच्छा अपने साथ ले जाते।"

"कहती तो आप ठीक हैं, लेकिन मेरे लिए यह मामूली-सी बात है। आपको शायद मालूम नहीं, मैं दिन में कितनी बार और कौन-कौन-सी बातें प्रायः भूलता रहता हूं। फिर माना कि मैं चाभी इसमें लगी हुई छोड़ गया था, आप उसे बन्द कर देतीं। लेकिन टेबल पर पड़ी हुई इस पत्रिका ने मुझे यह बतलाया कि आपने सूटकेस के अन्दर की हरएक चीज़ देखी है।"

"हर चीज़ देखना बुरा होता है?" लीला ने पूछा। उसकी मुस्कराहट

उस ढिठाई की सूचना दे रही थी जो कमलेश को अकृत्रिम जान पड़ती थी।

कुछ मुस्कराते हुए वह बोला, "कम से कम एक अनासक्त के लिए।"

"लेकिन मैं अनासक्त तो नहीं हूं। आप हैं कि नहीं, यह मैं नहीं जानती।"

कमलेश विचार में पड़ गया। 'शायद यह ठीक कह रही है।' फिर दो मिनट बाद बोला, "भाभी, मैं तुम्हें कोई उपदेश तो नहीं दे सकता। लेकिन इतना कह सकता हूं कि सत्य के प्रति आस्था उस दीपक के समान है, जिसकी ज्योति सदा जगमगाती रहती है। यह बात दूसरी है कि आप जब चाहें, उसे यह समझकर बुझा दें कि सभी कहीं न कहीं अपने-आपको छलते हैं, धोखा सब देते हैं, चोरी भी सब करते हैं। लेकिन क्या आप नहीं जानतीं कि मृत्यु किसीको क्षमा नहीं करती। धर्माधर्म की परीक्षा के क्षण न्याय किसीको नहीं छोड़ता।"

लीला को रोमांच हो आया। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह कोई योगी हो, जो कुछ क्षणों के लिए सौभाग्य से आ गया हो और फिर भविष्य में जिससे भेंट होने की कोई संभावना न हो।

वह बोली, "मेरे बड़े भाग्य थे, जो तुम एकाएक अकस्मात् मिल गए। कौन जाने अब कब भेंट हो? यह भी हो सकता है कि न हो। मेरा तुम-पर ऐसा कोई ज़ोर तो है नहीं कि तुम्हें रोक सकूं। लेकिन विदा की इन घड़ियों में आप इतना तो बतलाने की कृपा करेंगे कि जिज्ञासा क्या एकदम जड़ होती है? क्या परिस्थितियों के साथ उसका कोई संबंध नहीं होता? एक-आध दिन के लिए यहां रुक ही जाएंगे तो ऐसा कौन-सा बड़ा अनर्थ हो जाएगा।"

कमलेश के मन में आ रहा था, 'मैं अनास्था के अतिरिक्त और किसीसे नहीं डरता। फिर सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मैं अपने-आपसे ही डरता हूं।' तब उसने दृढ़ता के साथ कह दिया, "अनर्थ

का आरंभ कितना चमकदार होता है, कभी सोचा है ? नहीं सोचा तो अब सोच लो ! कल मैं ज़रूर चला जाऊंगा। चला तो आज ही जाता, लेकिन मालूम नहीं, भाई साहब कब तक आएं।"

कमलेश की इस बात का, लीला के ऊपर जाने क्या प्रभाव पड़ा। उसने साहस के साथ कह दिया, "कल की बात कल।" तुरंत घूमकर बिना रुके वह आगे बढ़ गई।

कमलेश आकर कुर्सी पर बैठ गया और फिर सिगरेट निकालकर मैच-बाक्स पर ठोकता हुआ सोचने लगा, "उस दिन तारिणी की आंखों में भी मैंने एक कुतूहल देखा था। उसने भी बड़े प्रेम से चाय पिलाई थी। मेरे लिए हरे मटर के समोसे उसने सामने बैठकर बनाए थे। जब मैंने चाय के साथ गरम समोसा का पहला टुकड़ा चम्मच से काटकर मुंह में डाल लिया, तो तालू, जीभ और मसूढ़े जल गए थे। उससे मैंने कुछ कहा नहीं। मेरे लिए यह पहला अनुभव था। लेकिन मुंह खुला रखकर उसकी भाप जब मैं बाहर निकालने लगा तब वह अपनी हंसी रोक न सकी थी।

'थोड़ी देर बाद मैं उसके यहां से लौट आया था तो उसने संदीप से कह दिया था—आपके मित्र ज़रूरत से ज्यादा सीधे हैं। मैं जानती हूं, उनका मुंह जल गया होगा।—फिर कई दिन बाद, जब संदीप ने मुझे बतलाया, तो मुझे बड़ा विस्मय हुआ था। फिर कई दिन बाद मैं उससे मिलने गया तो संदीप घर में न था। मैं चलने लगा, तो उसने आग्रह करके मुझे इसी प्रकार पुनः रोकते हुए कहा था, थोड़ी देर बैठ लीजिए। आज उतना गरम समोसा न खिलाऊंगी कि तालू, जीभ और मसूढ़े जल उठें ! उस दिन की बात और थी। एकदम ताजा भोजन कर लेने में धैर्य की परीक्षा हो जाती है। अभाव-सम्पूर्ति की घड़ियों में धैर्य खो देना भी जोखिम से खाली नहीं होता।'

उसकी यह बात कमलेश अब तक नहीं भूल पाया।

धीरे-धीरे एक-एक बात उसे याद आ रही थी।···· फिर कई दिन

बाद, जब कमलेश उसके घर गया, उस समय बत्तियां जल चुकी थीं। फिर भी संदीप अपने आफिस से लौटा न था। शायद तारिणी बरामदे में बैठी हुई कुछ काम कर रही थी क्योंकि जब द्वार पर कमलेश ने कुट-कुट किया, तो उसके आने में एक-आध मिनट लग गया था। किवाड़ खोलते ही उसके मुंह से निकल गया, "आज बड़ी देर कर दी ?" फिर कमलेश को सामने देखकर एकदम चौंक पड़ी। मतलब यह कि कमलेश के स्थान पर संदीप की कल्पना में ही वह ऐसा कह गई थी। फिर संभलती हुई बोली, "अरे आप !"

कमलेश उसका उस तरह चौंककर बात करना कई दिन तक भूल न सका। फिर एक दिन उसने इसी प्रेरणा के माध्यम से एक कविता लिख डाली, जिसकी पहली पंक्ति थी—'चौंककर जैसे तुमने कहा कि मैंने समझा था, कुछ और।'

कई दिन बाद एक दिन तारिणी ने पूछा, 'आपने इधर कोई नई कविता नहीं लिखी' तब कमलेश ने संदीप के सामने वही कविता उसको सुना दी थी।

कमलेश ने देखा, कविता सुनने के बाद वह कुछ अन्यमनस्क हो गई। अब उसे कुछ शंका हो उठी, 'क्या तारिणी को मेरी यह रचना रुचिकर नहीं लगी ?' क्योंकि कविता सुन लेने के बाद तत्काल वह वहां से उठकर चल दी थी। थोड़ी देर तक संदीप से वार्तालाप चलता रहा। अन्त में जब वह चलने लगा, तो संदीप बोला, 'ज़रा ठहरिए।' और उसे वहीं रोककर वह कदाचित् उसी कमरे में चला गया, जिसमें तारिणी बैठी थी।

कमलेश विचार में पड़ गया, 'क्या संदीप तारिणी से मेरे विषय में कुछ कहना चाहता है ? और क्या तारिणी को कोई ऐसा काम लग गया है, जो इस समय मुझसे मिलने की अपेक्षा अधिक आवश्यक है ?'

थोड़ी देर बाद जब संदीप अकेला लौट आया, तो कमलेश और भी चिन्ता में पड़ गया। अन्त में जब वह सीढ़ियां उतर रहा था, तब

तारिणी द्वार पर आकर बोली, 'नमस्कार !'

कमलेश ने अनुभव किया, उसका स्वर भर्राया हुआ है ।

संदीप आफिस से लौटने पर अपने मित्रों के साथ अक्सर काफी-हाउस चला जाता था। इसलिए कमलेश प्रायः उसी समय उसके घर जाता था, जब उसे इस बात का निश्चय हो जाता था कि अब तक संदीप ज़रूर आ गया होगा।

लेकिन एक दिन जब कमलेश उसके यहां पहुंचा तो द्वार खोलते ही तारिणी ने कह दिया, 'आज तो वे लखनऊ गए हुए हैं।' उसकी पलकें झुकी हुई थीं। सिर की कुन्तल-राशि दो भागों में इस प्रकार संवारी हुई थी कि एक भी केश बिखरा हुआ न था।

सारी बातें दृश्यवत् कमलेश के कल्पना-पट पर आ-आकर आगे बढ़ती जाती थीं।

कमलेश ने पूछा, 'लौट तो आएंगे आज ?'

वह कुछ संकुचित हो उठी और बोली, 'नहीं। लखनऊ से उन्हें सीतापुर जाना है। इसलिए हो सकता है, कल भी न आ सकें।'

कमलेश ने विदा चाहने के विचार से हाथ जोड़कर नमस्ते की, तो वह बोली, 'बैठेंगे नहीं ?'

उसका उत्तर था, 'नहीं।'

तारिणी की प्रकृति ऐसी अद्भुत थी कि पीड़ाप्रद बातें वह सदा हंसती-हंसती कर जाती थी। अतः उसने खिल पड़ते हुए ही कह दिया, 'मुझे तो रात-भर अकेले रहना है। फिर कल भी दिन-रात अकेले काटना है। परसों भी कौन जाने कब आएं। एक आप हैं जो मुझे अकेला देखकर भी थोड़ी देर मेरे पास बैठना स्वीकार नहीं करते।'

कमलेश तारिणी की इस बात पर एकाएक आश्चर्यचकित हो उठा था। फिर भी जब कमलेश जाने के लिए बिना कोई उत्तर दिए उद्यत हो उठा, तो उसने कह दिया, 'जानती हूं आपको रोक रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। लेकिन क्या आप मुझे इतना समझा सकेंगे कि

जिसका एक बार चौंक उठना आपकी कविता की प्रेरणा बन सकता है, वही अगर सूनेपन के कारण भय से रात में चौंक पड़े तो आपको कैसा लगेगा ?'

तारिणी की इस बात को सुनकर कमलेश स्तम्भित हो उठा था। यद्यपि वह सोचने लगा था, 'सब माया है। आदमी अपने जन्म की घड़ियों में सदा अकेला रहता है और जब उसका प्राण-पंछी उड़ने को होता है, तब भी वह अकेला ही जाता है।'

और इसी क्रम में वह सोचने लगा, 'समझ में नहीं आता कि अब भ भी आखिर मुझसे चाहती क्या हैं ?'

अब रेडियो पर फरमायशी गीत चल रहे थे। नीचेवाले परिवार का बालशिशु रो रहा था। जमुनी खाना बना रही थी। और हरी बाज़ार चला गया था। इतने में लीला आकर बोली, "अगर खाना यहीं लगा दिया जाए, तो···।"

लीला इतना ही कह पाई थी कि कमलेश बोल उठा, "मगर भाई साहब के बिना खाना खा लेना मुझे उचित नहीं लगता।"

"उनका इन्तज़ार कब तक करोगे ? सम्भव है, वे देर से लौटें।" कथन के साथ कलाई पर बंधी हुई घड़ी की ओर देखते हुए वह बोली, "अब आठ बज रहे हैं। और उनको गए हुए देर ही कितनी हुई ?"

कमलेश विचार में पड़ गया।

इतने में लीला चली गई। थोड़ी देर में हरी ने आकर कहा, "आप-को बहूजी बुला रही हैं।"

कमलेश उस ओर जाता हुआ सोचने लगा, 'ऐसी कौन-सी बात हो सकती है, जो लीला यहां आकर मुझसे नहीं कह सकती थीं।'

अन्दर एक टेबिल के पास, परस्पर अनुकूल दिशा में दो कुर्सियां पड़ी हुई थीं। टेबिल के नीचे हीटर जल रहा था। कमरे का एक द्वार खुला हुआ था जिसपर चिक पड़ी हुई थी। अन्दर बल्ब के स्थान पर मन्द नील नियॉन लाइट बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। रेडियो-संगीत का

स्वर धीमा कर दिया गया था और नीचेवाले परिवार के गृहस्वामी को खांसी आ रही थी।

कमलेश जब उस कमरे के अन्दर पहुंचा तो उसने लीला को एक अलमारी के पास खड़े हुए देखा। कमलेश को आया जानकर उसकी ओर उन्मुख होकर लीला ने कह दिया, "इधर चले आइए।"

बात क्या है, कमलेश की समझ में नहीं आ रही थी। इसलिए वह कुछ संकोच के साथ बीच में ही ठिठक गया।

अब उसने देखा, शीशे के गिलास में सुरा ढाली जा रही है।

फिर तत्काल दो प्लेट उड़द की पिट्ठी की पकौड़ियां और धनिया की चटनी जमुनी टेबिल पर रख गई और लीला दो गिलास एकसाथ टेबिल पर रख, दूसरी कुरसी पर बैठने का संकेत कर एक पर स्वयं बैठती हुई बोली, "मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

कमलेश को ध्यान हो आया लवंग जिस समय कपाट की ओट में खड़ी थी, उस क्षण अपनी उस दृष्टि में वह भी शायद यही कह रही थी।

सहसा एक निःश्वास फूट पड़ा।

चाहे जितने उच्च स्तर का व्यक्ति हो उसकी परिकल्पनाएं अपने जीवन-सौख्य का कोई आधार शेष नहीं रखतीं।

कमलेश के मन में आया, 'काश, उस रात को मैं लवंग को भी थोड़ी-सी सुरा पिला सकता।'

'पर हमारे लोकनायक तो मद्य-निषेध का अभियान चला रहे हैं।' उसकी अन्तश्चेतना बोली :

—हं-हं। राजनीति का चेहरा कितना उजला होता है, मुझे मालूम है। एण्टी-करेप्शन-डिपार्टमेण्ट भी तो अपने अभियान की दुन्दुभि बजाता रहता है। पर कौन नहीं जानता कि खाने के दांत दिखाने के दांतों से भिन्न होते हैं! फिर कोई अभाव अगर बना ही रहता है, तो वह किसी न किसी दिन विस्फोट का रूप धारण किए बिना नहीं मानता।

तभी एकाएक वह अवसन्न हो उठा। उसे ध्यान आ गया, तारिणी

ने कहा था, 'एक आप हैं, जो मुझे अकेला देखकर थोड़ी देर भी पास बैठना स्वीकार नहीं करते।'

कमलेश को चुप देखकर लीला बोल उठी, "अभी मैंने तुमको थोड़ी ही ढाली है, ज़रूरत समझना तो बाद में और भी ले लेना।" और अपना गिलास उसने ऊपर उठा लिया।

जब कमलेश टस से मस न हुआ तो वह बोली, "मेरी किसी बात पर जब तुम चुप लगा जाते हो, तो मैं विचार में पड़ जाती हूं।"

तब उसने गिलास थोड़ा ऊपर उठाया और फिर मेज़ पर रखते हुए कहा, "यह मैं क्या देख रहा हूं भाभी ?"

"क्यों ? इसमें क्या कुछ बुराई है ?" लीला ने एक ऐसी मुस्कान के साथ उत्तर दिया कि कमलेश को फिर लवंग की याद आ गई, 'उसको तो इस चीज़ का परिचय मैं दे नहीं पाया था !' फिर उसे जान पड़ा, जैसे लीला के मुख पर प्रबोध बाबू की छाया आ गई हो। तब बोला, "बुराई-भलाई की बात मैं नहीं कहता, लेकिन भाई साहब के साथ एक विश्वास-घात का आरंभ तो हम कर ही रहे हैं। तुम कहां जा रही हो भाभी, मैं स्वयं किस ओर बढ़ता जा रहा हूं, अगर एक क्षण को हम यह भी सोच लेते !"

दूसरा घूंट कंठस्थ कर लीला ने कुछ नाक-भौं सिकोड़कर, मुंह बिचकाते हुए कहा, "उंह ! चिंता मत करो, उनको कुछ नहीं मालूम होगा।"

एक घूंट गले के नीचे उतारकर ऊपर से पकौड़ी टूंगते हुए कमलेश ने उत्तर दिया, "अपनी इस स्थिति और उसकी भावी परिणति को उनसे छिपाकर क्या हम उनके उस विश्वास को नहीं तोड़ रहे हैं, जो हमारे इस परिचय और निकट संपर्क का मूल आधार है ?"

लीला एकाएक गंभीर हो गई। "यही एक ऐसी पवित्र चीज़ है, जिससे हम एक-दूसरे को जानने का अवसर पाते हैं।"

कमलेश सोच रहा था, 'जानकर किया हुआ पाप अधिक प्यारा

होता है। अगर मैं लवंग को कहीं उड़ा ले जाता और इधर-उधर घूम-घामकर महीने-दो महीने बाद अपने घर लौटता, तो किसीका क्या बिगड़ जाता ! मेरी लवंग प्यासी तो न मरती !'

इतने में लीला ने कह दिया, "आप कुछ नहीं जानते और मैं भी कुछ नहीं जान पाई। अभी थोड़ी देर पहले तुम्हारी जिस कविता पर बातचीत हो रही थी, अगर वह मेरी परिस्थिति से मिलती-जुलती हो, तो ? तो भी क्या तुम मेरे ऊपर यही आक्षेप कर सकोगे ?"

कमलेश को कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो लीला का कंठ भर आया है।

पहले क्षण-भर वह चुप ही बना रहा। फिर उसने कह दिया, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि हमारी सारी आस्थाएं परस्पर उसी भांति सम्बद्ध हैं, जैसी किसी श्रृंखला की कड़ियां हों। मतलब यह कि उनका विश्वास तुम इसलिए तोड़ रही हो कि उन्होंने तुम्हारा विश्वास तोड़ा है ! मतलब यह कि आस्था को तुम एक स्वतंत्र वृत्ति के रूप में स्वीकार नहीं करतीं ! किसीके साथ तुम भलाई तभी तक करोगी जब तक वह तुम्हारे साथ भलाई करता रहेगा। मतलब यह कि तुम्हारी अपनी भावना-निधियां एकदम से रिक्त और खोखली हैं।"

'इस व्यक्ति में भावना कम, चेतना अधिक है।'

'इस नारी में भावना अत्यधिक है। शायद वह भूखी भी बहुत है। और भूखी नारी का प्यार, कहते हैं, बड़ा गहरा होता है।'

'एसी घड़ियों में इससे इतना भी नहीं होता कि अपनी कुरसी मेरे पास सरका ले।'

'वैसे एक घूंट मैं और पी लूं तो।···'

'बहुतेरे विद्वान अपने व्यावहारिक जीवन में मूर्ख होते हैं। ये भी कुछ कम नहीं हैं।'

'क्या ऐसा हो सकता है कि प्रबोधबाबू को कुछ भी पता न चले और···।'

लीला ने गिलास खाली कर, मादकता के एक झकोरे के साथ कह

दिया, "तुम जिस भावना की बात उठा रहे हो, उसीके अनुसार मुझे कहना है कि पहले मैं हूं, मेरा मन है, मन की तृप्ति और शान्ति ! मेरा परिपूर्ण जागरित अस्तित्व है, उसके बाद और कुछ ।"

अब बात करते-करते लीला की पलकें झपकने लगीं। कमर और गले में एक लचक उत्पन्न हो उठती, और कमलेश मन ही मन सोचने लगा, 'लवंग को तुमने कुछ भी न देखने दिया। क्या अब स्वयं भी कुछ न देखोगे और अवसर आने पर पीछे ही लौटते रहोगे ?'

पकौड़ी टूंगती हुई लीला अपनी कुरसी को कमलेश के निकट खिसकाने लगी। फिर बोली, "मेरी एक बात चुपके से सुन लो।"

कमलेश कुछ शंकित मन से बोला, "कहो न, मैं सुन रहा हूं।"

तरंगित लीला बोली, "ऐसे नहीं, कान में।"

लीला का इतना कहना था कि कमलेश ने धीरे-धीरे शांत मन एवं स्थिर चित्त होकर उत्तर दिया, "मैं यही सोच रहा था भाभी, सही हो कि गलत, लेकिन कुछ स्वप्न होते बड़े आश्चर्यजनक हैं।"

"स्वप्नों की बात मत पूछो डियर। जब से मैंने तुमको देखा है, तब से मैं यही सोचती हूं कि दूसरे मार्ग पर चले बिना भला कोई कैसे जान सकता है कि अब—इतने अर्से के बाद—कहीं मुझे सही मार्ग मिला है ?"

"हः-हः-हः ! मैं अभी सोचने लगा था—तुम कहोगी, गांधी-मार्ग मिला है।"

"मजाक रहने दो। जिन्दगी मजाक नहीं है।······हां, मैं तुमसे यह कहना चाहती थी कि तुम अगर यहीं आ जाओ, तो कितना उत्तम हो !"

"कोई आधार तो होना चाहिए।"

"तुम समझते हो, जब तुम यहां आ जाओगे, तो मैं तुमको निराधार छोड़ दूंगी ?"

"तुम्हारा यह हाथ मुझे बड़ा कोमल लग रहा है। लेकिन ऐसे में अगर भाई साहब आ जाएं तो ?"

"तुम बड़े कायर हो !"

"हरएक चिन्तक पर यह आरोप लग सकता है ।"

"वे आज देर से लौटेंगे । तब तक तो……।"

"अगर मैं ऐसा कुछ जानता, तो तुमको भाभी कभी न कहता ।"

"अब से बन्द कर दो ।"

कमलेश विचार में पड़ गया ।

अब लीला की पलकों पर आलस्य उतरने लगा था । अतः उसने कह दिया, "पियो-पियो, अब खतम करो जल्दी । ऐसी दुर्लभ घड़ियों में बहुत सोचा नहीं करते ।"

"भगवान की जिस प्रेरणा से मैंने तुम्हें भाभी कहा है, उसके प्रति अन्याय न हो जाए । यद्यपि तुम्हारा यह प्यार मेरे लिए एक सौभाग्य है….." कहकर कमलेश सोचने लगा, 'अब इसके बाद यह घूंट पीना ही पड़ेगा' और गिलास खाली करते हुए बोला, "लेकिन ज़रा दूर तक सोचकर देखो, हम कहां जा रहे हैं !"

"बाढ़ आने पर नदी की कोई धारा किसी पेड़ को नहीं बतलाती कि तुमको मैं कितनी बार उलट-पुलटकर देखूंगी, प्यार से नहलाऊंगी, साथ ही साथ कहां तक बहा ले जाऊंगी, कुछ ठीक नहीं ।" कथन के साथ लीला मुस्कराती जा रही थी ।

"तो हम सबके सब लक्ष्यहीन हैं ?"

"अपना-अपना विचार है । जीवन क्या अपने-आपमें एक महान लक्ष्य नहीं है ?"

'इस दृष्टि से देखूं तो मैंने तारिणी के साथ भी अन्याय किया था । और अब क्या मैं प्रबोधबाबू के साथ अन्याय नहीं कर रहा हूं ?' सोचते हुए कमलेश बोला, "तुम जो कुछ भी बिना कहे कह रही हो, उसकी मर्मवाणी मेरे अन्तराल को छू रही है । यह मैं उसी दिन से अनुभव कर रहा हूं, लेकिन तुम यह क्यों भूल जाती हो कि कुछ भी हो, तुम मेरे लिए स्वप्न हो । मैं तुम्हारा स्वप्न ही देख सकता हूं, तुम्हें पा नहीं सकता । जानती हो क्यों ? क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि स्वप्न जब

साकार हो ले, तब मैं देखूं कि इसी कारण भाई साहब इस संसार से विदा हो गए हैं। देर से उनका शव चारपाई पर पड़ा हुआ है। बाईं करवट लिए हुए जिन आंखों ने यह दृश्य देखा है, वे खुली रह गई हैं और जिस मुख से उन्होंने एक शब्द नहीं कहा, उस मुख पर मक्खियां भिनक रही हैं।"

शायद कमलेश और भी कुछ कहता, पर तभी लीला के मुख से एक चीख निकल गई।

इतने में जान पड़ा—प्रबोधबाबू आ गए हैं।

कमलेश के लिए यह स्थिति सर्वथा नई और अप्रत्याशित थी। मादकता का प्रभाव उसके लिए साधारण था। अतः उसका चिंतन अब भी संतुलित बना हुआ था।

प्रबोधबाबू ने दूर से ही जो दृश्य देखा, उसको वह और आगे न देख सके। बल्कि अपने कमरे में चुपचाप लौट आए।

कमलेश लीला की ओर ध्यान न देकर उन्हींके पास चला आया, "आप कमरे के अन्दर आते-आते लौट क्यों आए ? आपको पता ही है, भाभी को बड़े ज़ोर का जुकाम और थोड़ा ज्वर है। और मित्रों के साथ बैठकर मैं कभी-कभी इस चीज़ से बच नहीं पाया हूं, यह बात मैं आपसे छिपाना नहीं चाहता। मैंने सोचा—ओषधि के रूप में, भाभी थोड़ी-सी ले लें, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है। पर वे इसके लिए सहमत न थीं। बड़ी मुश्किल से उन्होंने दो-चार बूंद ली है ! दोष अगर है तो मेरा। लेकिन अब देर करने का समय नहीं है। भाभी भयाक्रांत होकर मूर्च्छित हो गई है। चलिए देखिए।"

प्रबोधबाबू गम्भीर हो उठे थे। कुछ बोल तो न सके, लेकिन दायां हाथ उनका मस्तक पर आ गया। एक मिनट स्थिर रहे। दाईं ओर का होंठ कुछ फड़कने लगा। फिर एक निश्वास दबाते हुए जान पड़े।

बिना कुछ कहे वे लीला के पास चल दिए। कमलेश ने सोचा, 'मेरे जाने की तो कोई आवश्यकता है नहीं।···मैं ऐसा कुछ जानता

भी न था। मालूम नहीं क्या होनहार है ?'

टेबिल पर खाली गिलास, सोडे को खाली बोतल, पकौड़ी की दो प्लेटें रखी हुई थीं। लीला का सिर कुरसी के हत्थे से लटका हुआ था। साहस करके उन्होंने उसको उठाकर कन्धे पर डाल लिया। एक हाथ से उन्होंने पलंग बिछाया और फिर लीला को उसपर चित लिटा दिया। बिस्तर से तकिया निकाला और उसके सिरहाने रख दिया। ऊपर से कम्बल उढ़ाकर वे उसके पास बैठ गए और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "चिन्ता की कोई बात नहीं है। अब भी तुमने मेरा विश्वास नहीं खोया है।"

लीला चुपचाप पड़ी रही। प्रबोधबाबू ने पुकारा, "जमुनी !"

जमुनी पास जा पहुंची। प्रबोधबाबू बोले, "ज़रा साहब को बुलाना।"

जमुनी जब कमलेश के पास पहुंची, तो वह सिगरेट जला रहा था।

प्रबोधबाबू सोचते थे, 'यह संकट मैंने स्वयं मोल लिया है। इसलिए इसका सम्पूर्ण दायित्व मेरे ही ऊपर है। मैंने ही इनसे कहा था कि आप रुकिएगा, मैं अभी आता हूं। यद्यपि मैं ऐसा कुछ जानता न था कि इनके सम्पर्क के कारण ऐसी कोई घटना भी हो सकती है। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जिस भविष्य की यह पृष्ठभूमि जान पड़ती है, कमलेश बाबू ने अपने वक्तव्य में उसी प्रकार के साहस का परिचय दिया है। यह सचमुच अद्‌भुत है। जब तक किसी व्यक्ति के आचार-विचार के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान न हो, तब तक उसे अपने पारिवारिक जीवन के निकट लाना निरापद नहीं होता। लेकिन जो व्यक्ति इतने उच्च स्तर से बोलता है, वह भीतर से कहीं दुर्बल भी हो सकता है, यह मैं सोच भी न सकता था। कमलेश के कथनानुसार तो जान पड़ता है, लीला का कोई दोष नहीं है।

'अच्छा, ऐसा भी तो हो सकता है कि लीला ने केवल आतिथ्य-

सत्कार के नाते, कमलेश के लिए मदिरा मंगवा ली हो। यद्यपि कभी-कभी कमलेश की बात किसी साधु-वैरागी से कम नहीं होती। कभी-कभी तो वह अपनी बातों से ऐसी श्रद्धा उत्पन्न कर देता है, जैसे वह सचमुच एक विचारक हो।

'फिर प्रश्न उठता है, अगर लीला के मन में कमलेश के लिए कोई आकर्षण होता, तो वह उसको भगा देने के लिए मुझसे आग्रह क्यों करती? उसको घर ले आने पर उसने पहले ही आपत्ति की थी। इससे भी यही सिद्ध होता है कि लीला के मन में, कमलेश के लिए कोई वैसा स्थान नहीं बन पाया है जो मेरे लिए विशेष चिन्ता का विषय हो। पर ऐसा भी तो हो सकता है कि जिस आशंका से उसने कमलेश से सम्पर्क बढ़ाना उचित न समझा हो, वही उसको अनुप्राणित करती हो।'

एक-आध मिनट के अन्दर प्रबोधबाबू ने इन सारी बातों पर विचार कर लिया।

अब कमलेश प्रबोधबाबू के पास आ पहुंचा था। उसने एक सहज भाव से पूछा, "यह मूर्च्छा इनको आज ही आई या पहले भी कभी आई थी?"

प्रबोधबाबू बोले, "यों तो साल में एक-आध बार पहले भी आती रही है। पर चिन्ता की कोई बात नहीं है। अभी थोड़ी देर में चेतना आपसे-आप लौट आएगी। मैं आपसे केवल यह जानना चाहता था कि भूल से या भ्रम से, आपने इससे कोई ऐसी बात तो नहीं कही थी, जो उसकी रुचि, शील और संस्कार के विरुद्ध हो। यद्यपि मैं आपसे ऐसी कोई आशा नहीं करता। और इतना तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि आप मुझसे झूठ नहीं बोल सकते।"

कमलेश बोला, "यह मैं कैसे कह सकता हूं कि नहीं कही। मैंने कहा है कि जुकाम में यह चीज़ लाभ पहुंचाती है। मैंने यह भी कहा है कि अगर भाई साहब को यह बात बुरी लगेगी, तो मैं उन्हें समझा लूंगा क्योंकि यह बात मेरे अनुभव की है।" अब प्रबोधबाबू कमलेश के मुख की ओर आश्चर्य से देखते हुए सोचने लगे, 'मैंने इतना साफ आदमी

आज तक नहीं देखा ।'

इतने में जान पड़ा कि लीला कुछ बुदाबुदा रही है। कमलेश तो यथास्थान बैठा रहा, पर प्रबोधबाबू ने पलंग के निकट जाकर देखा। लीला के होंठ हिल रहे थे, पलकें हिल रही थीं।

बुदबुदाती हुई वह कह रही थी, "नहीं, नहीं, उनसे कुछ मत कहो। उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं कही, जो हमारे सम्मान के विरुद्ध होती। वे मनुष्य नहीं देवता हैं। तुम उन्हें नहीं पहचानते।"

कथन के साथ ही एकाएक उसके दोनों हाथ ऊपर उठकर सिरहाने गिर पड़े। फिर एक निश्वास लेते हुए उसने बाईं ओर करवट बदल ली।

अब उसके भाल पर पसीने की बूंदें झलकने लगी थीं। तभी प्रबोधबाबू कोट की जेब से रूमाल निकालकर उसका पसीना पोंछने लगे।

थोड़ी देर तक लीला जब कुछ न बोली, तब वे चुपचाप अपनी खाली कुर्सी पर आ बैठे।

अब वे फिर सम्भ्रम में थे। कभी सोचते, 'इस समय इस अवचेतन अवस्था में निकली हुई लीला की कोई बात झूठ नहा हो सकती।' पर फिर एक बार दोनों गिलासों की ओर जो उन्होंने दृष्टि डाली, तो यह देखकर वे विचार में पड़ गए।

कमलेश अब तक चुप था। जान-बूझकर उसने यह नहीं पूछा कि भाभी क्या कह रही थी। पर अब उसे भूख लग आई थी। अतः उसने घड़ी देखते हुए कहा, "बीस मिनट हो गए। अब तक तो उन्हें होश आ जाना चाहिए था।"

प्रबोध बाबू बोले, "बस अब आने ही वाला है। अच्छा हो कि आप भोजन कर लें। नौ बज रहा है।"

कमलेश ने उत्तर दिया, "भाई साहब, इस घटना ने मेरी भूख गायब कर दी है। जी में आता है एक बार एकान्त में जाकर अच्छी तरह रो लूं। आप जानते हैं, मैं अपना सूटकेस और बैडिंग लेने आया था; पर यहां यह दुर्घटना हो गई। अब मैं क्या कहूं आपसे?"

इतने में लीला ने दाईं ओर करवट बदलते हुए आंखें खोल दीं स्वामी और कमलेश दोनों को कुरसियों पर बैठा हुआ देखकर वह एकाएक उठने लगी।

कमलेश बोला, "तुम लेटी रहो, भाभी।"

दोनों ने अपनी-अपनी कुरसियां पलंग के निकट खींच लीं। मगर लीला लेटी नहीं, वह उठकर बैठी रह गई।

अब प्रबोधबाबू की चिंता कुछ कम हो गई थी। अतएव उन्होंने पूछा, "कहां खो गई थीं ?"

लीला के अधर थोड़े विकसित हुए। उसने कुछ कहना चाहा, पर वह विचार में पड़ गई—'क्या कहूं, क्या न कहूं ?

तब तक कमलेश बोल उठा, "किसीके मन की बात कोई जान नहीं सकता। जो थोड़ा-सा अनुमान लगा भी लेता है वह अनिश्चित दशा में कुछ कह नहीं पाता। जो कुछ कहता भी है वह सबकी समझ में नहीं आता। केवल एक मानव-चरित्र है जिसे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आप लोगों का शील-सौजन्य, आतिथ्य और सद्व्यवहार मैं कभी नहीं भूलूंगा। अब तो बस, यही एक प्रार्थना है कि आप मुझे जाने दें।"

प्रबोधबाबू बोले, "बिना खाना खाए तो जा नहीं सकते। और आज तो किसी तरह नहीं जा सकते।"

इतने में लीला पलंग से उतरकर द्वार की ओर बढ़ती हुई बोली, "खाना ले आ न जमुनी।" और शीशे के आधे भरे उस गिलास को छज्जे के कोने में लुढ़का दिया।

तभी प्रबोधबाबू ने फिर प्रश्न कर दिया, "तुमने बताया नहीं लीला, आज यह मूर्च्छा तुम्हें क्यों आई ?"

कमलेश बोला, "मेरा अपराध अगर कुछ है, तो बस इतना कि मैंने बिना सोचे-समझे इतना कह दिया—जुकाम में थोड़ी-सी मैं कभी-कभी ले लेता हूं। आप भी ले लें तो कोई हर्ज नहीं है।"

कमलेश की इस बात पर लीला उसे सतृष्णदृष्टि से देखने लगी।

उसके मन में आया, 'देवता और किसे कहते हैं ?'

तभी फिर कमलेश ने कह दिया, "सभी जानते हैं कि कोई भी पाप-कर्म सदा दुःखदायी होता है। मैं भी जानता हूं और आप भी। पर क्या आप सोच सकते हैं कि न चाहते हुए भी कोई-कोई सलाह-मात्र उस व्यक्ति के लिए पाप की संज्ञा बन जाती है जिसके संस्कार उसके विरुद्ध होते हैं। एक प्रकार से मानवी प्रकृति का ही यह दोष है कि भलाई चाहते हुए भी वह कभी-कभी ऐसी बुराई कर बैठती है, जो एक ओर से प्रकृत कर्म होने पर भी दूसरी ओर से पाप का रूप धारण कर लेती है। बड़ी देर से मैं यही अनुभव कर रहा हूं कि प्रकृति का धर्म भी कभी-कभी कल्याणकारी नहीं होता। कदाचित् इसलिए कि वह संस्कार नहीं देखता और भावी सम्भवनाओं के फलाफल पर भी विचार नहीं करता।"

प्रबोधबाबू एकाएक मुस्करा पड़े। तभी उनके मुंह से निकल गया, "यह कुछ बात हुई !"

अब टेबिल पर खाना लग रहा था और लीला सोच रही थी, 'आज नहीं, तो कल तो कमलेश बाबू चले ही जाएंगे। तब क्या होगा ?'

४

प्रबोधबाबू जब पलंग पर लेटे, तो दस बज गए थे। हरी उनको और कमलेश को दूध पिलाकर लौट गया था। अब जमुनी कह रही थी, "देख्यो नहीं ?"

हरी बोला, "का ?"

द्वार पर जाकर नाक साफकर आंचल से उसे पोंछती हुई जमुनी बोली, "अरे वही नाटक, जौन बहूजी खेलत रहै। पहिले तो साहब के साथ बैठके दारू पिहिन, फिर जब बाबूजी आयगे, तब बेहोश हुइ गईं।"

"तो यहि मा नाटक का भा !" हरी बोला, "एक-ठे बीड़ी दे रे। साहब त चुरुट हमेशा पीतै रहत हैं। को जाने कउने मतलब से आयेन हैं।"

"ऊंह ! तू काहे झुरसा जात हौ !"

बीड़ी पीता हुआ हरी बोला, "अब तोका का बताई। साहब जायं का बोले, तो दूनौ प्रानी उनका जाए नाहीं दिहेन। अब न जाने का खुसुर-पुसुर करत अहैं।"

"हम कहित है, तोका का परी ? तु हूं करऽखुसुर-फुसुर !"

प्रबोधबाबू सोच रहे थे, 'यह लालचन्द जब आता है, तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी मिनिस्टर का दामाद हो। लेकिन नकद कपड़ा कभी नहीं खरीदता। हमेशा उधार। सदा पहली तारीख की शाम को दे जाता था, इस बार पांच तारीख हो गई। घर पर तकाज़े के लिए जाता हूं, तो बिगड़ उठता है। कहता है—तुम यहां आए क्यों ?...और हिम्मत-

लाल का तो पता ही नहीं चलता। जब देखो तब घर में नहीं हैं। सवेरे आठ बजे नहीं मिलता और रात के नौ बजे भी नहीं। एक सौ सत्तासी रुपये बारह आने लटके पड़े हैं और कपड़ा लिए हुए तेरह महीने हो गए। सोचता हूं, एक बार मिल-भर पाए, साले की हुलिया टाइट कर दूं। कल सवेरे ही पहुंच जाऊंगा। मगर कल कैसे जाऊंगा ? कमलेशबाबू को भी तो विदा करना है। मगर आदमी इतने विचित्र किस्म का है कि पता ही नहीं चलता, किस धातु का बना है ! अभी मैं देखने गया था कि कर क्या रहा है ? तो क्या देखता हूं कि आप फर्श पर आसन डाले, गले में धोती का पल्ला लटकाए, ऊपर से कम्बल ओढ़े, आंख मूंदे, दोनों हाथ घुटनों पर रखे ध्यानावस्थित हैं। मैं चुपचाप खड़ा रहा, दो मिनट, चार मिनट, लेकिन उसने आंखें न खोलीं, न खोलीं। मैं लीला को पकड़कर द्वार पर ले गया। मैंने कहा—देखो। वह पहले हंस पड़ी। फिर उसने साड़ी के अंचल को मुंह से लगा लिया। हम थोड़ी देर खड़े रहे। इतने में क्या देखता हूं उसका सीना हिल उठा है और आंखों से आंसू टपक रहे हैं। लीला चकित, स्तब्ध हो उठी और मैं तो कम्पित हो उठा। मैंने इसको कितना गलत समझा था !'

फिर उन्होंने करवट बदल ली। चिन्तन चल रहा था, 'हो सकता है, यह पश्चात्ताप का एक प्रकार हो। मन में आता है—ऐसे व्यक्ति को सदा के लिए अपना बनाकर रखूं। लेकिन फिर सोचता हूं, ऐसा व्यक्ति मेरे यहां क्या, कहीं भी नहीं ठहर सकता। एक बात भी झूठ नहीं बोला। एक शब्द में भी कृत्रिमता नहीं जान पड़ी। और अब तो इन आंसुओं से अपने भीतर का सारा कर्दम और कलुष धो डाला है। मुझे कुछ सन्देह तो हुआ था, लेकिन अब मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यह आज के युग का मानव है ही नहीं। यह तो साधक, तपस्वी और योगी है। हाय ! मैंने इसपर व्यर्थ ही सन्देह किया।'

और उधर लीला अपने पलंग पर पड़ी हुई मन ही मन उन सब बातों को बारम्बार स्मरण कर रही थी जो कमलेश ने समय-समय पर

कही थीं। सबसे पहले उसे याद आई वह बात, रवीन्द्रबाबू के शब्दों में जिसे वह बिस्तर संभालने से पूर्व ट्रेन पर कह रहा था, 'सोचता हूं यह एक स्वप्न है, जिसमें बहुतेरी प्रिय वस्तुएं इतनी बिखरी हुई हैं कि उन्हें देखकर व्याकुल हो उठता हूं। एक दिन आएगा, जब मैं जागते हुए उन सभी वस्तुओं को तुझमें एकत्र पाऊंगा और तभी मैं सदा के लिए मुक्त हो जाऊंगा।'

लीला का कण्ठ भर आया। आंखों में आंसू कुलबुला उठे। वह सोचने लगी, 'ओः, तो ये मुक्ति की खोज में निकले हैं। तब ऐसा भी हो सकता है कि संसार का जो चरम सौख्य है, परमानन्द की घड़ियां हैं, अहरह आकर्षण के पावन संयोग हैं, मिलन-संभोग की गन्ध-लुब्ध मादक यामिनी है, लता-द्रुम-वृन्त-पुष्प-चुम्बन-विहार-वल्लरियां हैं, उनका सम्यक् अनुभव प्राप्त किए बिना ही ये एक दिन इस संसार से चल देंगे! तब हंस, मृग, सारंग, कोयल, सारिका और इन लालमुनियों का क्या होगा! सर-सरिताएं कहीं सूख तो न जाएंगी! वसंत और पावस जैसी मधु-ऋतुओं का लोप तो न हो जाएगा! विश्व का सारा माधुर्य कहीं अन्तरिक्ष में विलय हो गया तो! न, मैं ऐसा न होने दूंगी।'

बारम्बार ये नयन गीले क्यों हो उठते हैं? यशोधरा ने कहा था, 'सखि वे मुझसे कहकर जाते!' सहसा वे भंगिमाएं उसे याद आ जातीं, जिनमें उसके स्वरों की लहरें मन्द, मृदुल और प्रखर हो उठतीं। भाल पर रेखाएं बन जातीं, भृकुटियां तन जातीं, या उल्लास-गर्वित आनन गुलाब-सा खिल उठता। फिर एक निश्वास लेती-लेती, लिहाफ से मुंह खोल वह स्वामी की ओर देखती हुई बोली, "सो गए क्या?"

वह मन्द-नील नियॉन लाइट अभी तक जल रही थी। प्रबोधबाबू बोले, "नींद कहां है? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अब तक यह जीवन व्यर्थ हो गया है! मेरी समझ में नहीं आता कि यह कमलेश तीस-बत्तीस वर्ष की अवस्था में ही, विश्व के माया-मोह-लोभ और अहंकार से इतना निर्लिप्त कैसे हो गया?"

"तो अब ऐसा करो कि तुम भी इन्हींके साथ लग जाओ।" सहसा लीला बोली, "उत्तम तो यह होगा कि दण्ड-कमण्डल और काषाय-वस्त्र भी धारण कर लो और परम उद्ग्रीव परिव्राजक बनकर जीवन-मुक्त हो जाओ! और हां, मुझको थोड़ी-सी संखिया खिला दो। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।"

लीला के उत्तर की यह शब्दावली प्रबोधबाबू के वक्ष में तीर-सी चुभ गई। वे कुछ कहने ही वाले थे कि तब तक लीला बोल उठी, "हालांकि आजकल लोहे और पीतल की बांसुरी भी सुलभ हो गई हैं।"

"बको मत लीला। मुझे सब मालूम हो गया है।" कहते-कहते प्रबोधबाबू ने पलंग से उठे बिना केवल हाथ उठा बटन दबाकर कमरे का प्रकाश तिरोहित कर दिया।

आवेश में आकर लीला ने तभी उत्तर में कह दिया, "सोच-समझकर बात किया करो बाबू। मालूम तो तुम्हें तब होगा, जब इस घर से मेरी अर्थी निकलेगी।"

अब आकाश में मेघ घिर आए थे। कौंधा लपकता था, बिजली चमकती थी। बादल गरज रहे थे और पवन का वेग उत्तरोत्तर तीव्र होता जा रहा था। एकाएक वातायनों से हवा के साथ-साथ धूल-कण, तिनके, छोटे-छोटे कागज़, रुई और पत्तियों के टुकड़े कमरे के भीतर आने लगे। तभी फिर लाइट ऑन करके प्रबोधबाबू ने वातायनों को बन्द करने के लिए उनकी डोरी हुक से खोलकर ढील दी। निकटवर्ती मकानों के द्वारों और खिड़कियों के कपाट वेग के साथ खटाखट बोलने लगे और बरामदों पर छाई हुई टीन की चद्दरें जैसे चीत्कार करने लगीं! कहीं-कहीं से, किसी-किसीका तीव्र स्वर भीतर आने लगा, "अरे देखो, नीम की डाल फट पड़ी है! कहीं कोई दब तो नहीं गया!"

फिर पहले पटापट बूंदें पड़ीं, साथ ही ओले गिरने लगे। नीचे रहने-वाले गृहस्वामी कह रहे थे, "रबी की यह फसल तो गई। न जाने क्या होनहार है! दुर्भिक्ष आकर रहेगा! जब किसान के घर में अन्न ही न

पहुंचेगा, तो वह अपने बाल-बच्चों को क्या खिलाएगा !······कहीं-कहीं शंख-ध्वनि हो रही थी और कहीं से अरररऽधम की आवाज़ आ रही थी।

इतने में भय-कम्पित लीला उठ बैठी। बोली, "बैठे देखते क्या हो ! तूफान आ गया है। साथ ही ओले गिर रहे हैं। ज़रा देखो, कितने-कितने बड़े ओले हैं।"

प्रबोधबाबू उठ बैठे। उनके मुंह से निकल गया, "ओले बरसना तो जान पड़ता है बन्द हो गया। लेकिन पानी कितना बरस रहा है। बड़ा दुर्दिन है।"

फिर किवाड़ खोलकर छज्जे पर आकर देखा, सचमुच ओले आंवले जैसे बड़े थे। कुछ ओले छज्जे पर भी पड़े थे। लीला उनके पीछे खड़ी थी। एक ओला उसने हाथ में लेकर देखा और कहा, "अगर मैं इसको खा लूं तो !"

"तो निमोनिया, सन्निपात, और मृत्यु। पागल कहीं की !"

तब लीला ने ओला वहीं छोड़ दिया। प्रबोधबाबू बोले, "चलो हटो, अब बन्द करें।"

"जीवन को तुम इतना मोम समझते हो ! अरे मैं कहती हूं एक नहीं दो ओले खा लूं और मुझे जुकाम तक न हो।" फिर आप ही हंस पड़ी, बोली "जुकाम तो पहले से ही है।"

प्रबोधबाबू चुपचाप पलंग पर पड़ रहे। लीला बोली, "जब आदमी का ईश्वर से विश्वास उठ जाता है और वह खुलकर बेईमानी, लूट-खसोट, छल-कपट और प्रवंचना पर तुल जाता है, बच्चों के मुंह की रोटी छीनकर खुद खाने लगता है। सगे भाई शत्रु बन जाते हैं। वयस्क सोचने लगते हैं कि पिता-माता मरे तो उनकी जमा-पूंजी हाथ लगे। बस तभी प्रकृति ऐसे विनाश का खेल रचती है। मुझे तो जान पड़ता है अब ऐसा ही समय आ गया है।"

प्रबोधबाबू का एक पैर धरती पर था और दूसरा पलंग पर। तभी

वे मन ही मन सोचने लगे, 'इन सब लक्षणों में से किसी न किसीमें तो मेरी गणना भी हो सकती है, 'बेईमानी ?' थोड़ी देर ठहरे—'नहीं। लूट-खसोट—नहीं। छल-कपट ?—बुद्धिवाद का लक्षण। किसी बुरे उद्देश्य से नहीं, केवल नीतिवश। प्रवंचना ?—नहीं। लेकिन आत्म-प्रवंचना शायद मुझमें है। क्योंकि कभी-कभी अपने-आपपर अत्यधिक विश्वास कर लेता हूं। यहां तक कि सतुलन खो बैठता हूं। लेकिन इसका सामाजिक हित के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है ?'

फिर सोचा, 'हो भी सकता है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य दूसरे को प्रभावित करता है।'

अब आया, बच्चों के मुंह की रोटी छीनकर खानेवाला प्रश्न। थोड़ी देर स्थिर रहे। फिर एक निःश्वास लेकर चुप रह गए। और चित लेट गए।

इतने में कमरे का प्रकाश आपसे-आप लुप्त हो गया। तब वे बोल उठे, "जान पड़ता है बिजली का तार कहीं टूट गया है। या तो खम्भा गिर गया है, या तारों पर पेड़ ही फट पड़ा है! गनीमत है कि लाइट ही आफ हुई है, हमारे इस मकान को कोई क्षति नहीं पहुंची। लेकिन पवन का यह हहराता स्वर तो सुनो ज़रा।"

लीला बोली, "मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे प्रलय का कोई गीत चल रहा हो, काल-भैरव ताल दे रहे हों, मृत्यु अट्टहास कर रही हो और श्मशान में मेला लगने जा रहा हो!"

"ऐसा कुछ मत कहो लीला।"

"क्यों, डर लग रहा है ?"

"डर तो भला क्या लगेगा ? लेकिन ऐसे में यदि कमलेश बाबू पास बैठे होते, तो इस प्रसंग में भी वार्तालाप सुनने का अवसर मिलता।"

"चलो चलें, देखें क्या कर रहे हैं ?"

"मगर ऐसे अंधेरे में कैसे चलेंगे ?"

"मैं तो चल सकती हूं।"

"तुम्हारी क्या बात है ? तुम्हारे लिए तो साहस ही एक प्रकार का प्रकाश है ।"

लीला ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "यह कुछ बात हुई !"

तब प्रबोधबाबू भी हंस पड़े और बोले, "अब टाल जाओ, बहुत हो गया ।"

तब लीला ने कह दिया, "अच्छी बात है । मैं सोती हूं, तुम भी सो जाओ ।"

इतना कहकर उसने घुआ की रुईवाले मुलायम तकिये के ऊपर घुटना रखकर करवट बदल ली ।

रह-रहकर कमलेश की कुछ बातें उसे फिर स्मरण आने लगीं, 'उसने कहा था—संयोग किसी दूरी पर विश्वास नहीं करता···लेकिन कोई-कोई वियोग चिर मिलन का हेतु बन जाता है क्योंकि अपनी आस्था प्रमाणित करने के लिए, कोई-कोई व्यक्ति अपना सर्वस्व तक उत्सर्ग कर डालता है······!' फिर वह सोचने लगी, 'ये आस्थावादी कितने हैं । कहते थे—आश्वासन दिया जाए, तो उसे पूरा ही होना चाहिए ।' एकाएक उसको रोमांच हो आया । तभी उसे याद आया, 'भाभी, मैं तुम्हें कोई उपदेश तो नहीं दे सकता । लेकिन इतना कह सकता हूं कि सत्य के प्रति आस्था उस दीपक के समान है, जिसकी ज्योति सदा जगमगाती रहती है । अच्छा क्या ऐसा नहीं हो सकता कि······!' एक निःश्वास ! 'हाय रे दुर्भाग्य ! आज न जाने मुझे कैसा लग रहा है !—बेला फूले आधी रात···!' फिर उसे आगे यह भी स्मरण हो आया, 'यह बात दूसरी है कि आप जब चाहें, उसे यह समझकर बुझा दें कि सभी कहीं न कहीं अपने-आपको छलते हैं । लेकिन क्या आप नहीं जानतीं कि सत्य कभी दब नहीं सकता—मृत्यु किसीको क्षमा नहीं करती । और धर्माधर्म की परीक्षा के क्षण काल किसीको नहीं छोड़ता······! हां, कहते तो ठीक हैं । फिर मृत्यु के अनन्तर, शेष क्या रह जाता है !······तुम ऐसे ही बने रहना मेरे दीपक, इसी प्रकार ज्योतिर्मय ।'

बाहर पवन के वेग से सांय-सांय स्वर उठ रहा था। और लीला कमलेश के शब्दों में सोच रही थी, 'मैं कल ज़रूर चला जाऊंगा—मैं कल ज़रूर चला जाऊंगा।'

होते-करते थोड़ी देर में उसकी आंखें झपकने लगीं और उसे नींद आ गई।

लेकिन प्रबोधबाबू को बड़ी देर तक नींद नहीं आई। उनको लीला की यह बात बार-बार चुभ रही थी कि 'अच्छा हो, अब तुम भी इन्हींके साथ लग जाओ और दण्ड-कमण्डल के साथ काषाय-वस्त्र धारण कर लो।' और इस बात पर तो वे बड़ी देर तक विचार करते रहे जो उसने कह दिया था, 'मुझे संखिया दे दो।' फिर यह भी उनके मन में आया कि उन्हें उसपर ऐसा आक्षेप न करना चाहिए था। क्योंकि मालूम तो कुछ नहीं हुआ था जबकि उन्होंने कहा था, 'मुझे सब मालूम हो गया है।' रह गई सुरा ढालने की बात सो उससे वे इतने अपरिचित नहीं हैं कि अछूत समझ बैठे हों।

धीरे-धीरे वर्षा का वेग मन्द पड़ने लगा और आकाश में घिरी मेघ-मालाएं छटने लगीं। अब प्रबोधबाबू की आंखें झपकने लगी थीं।

कमलेश को सदा एक ही बात की चिन्ता रहती कि वह इस जगत् के किस काम आ सकता है। संसार में ये जितने अभावग्रस्त, पीड़ित, संतप्त, दुखीजन हैं, उनके जीवन में सौख्य मन्दाकिनी कैसे प्रवहमान हो सकती है।

मृत्यु का मुख बड़ा सर्वभक्षी होता है। वह जिसको चाहती है, उसको सहज ही उदरस्थ कर लेती है। उसका पेट भी बड़ा होता है। सारे संसार की ओर ध्यान से देखें तो विदित होगा कि उसकी भोजन-प्रक्रिया का क्रम कभी भंग नहीं होता। अबाधगति से वह सदा चला करता है। एक भी क्षण ऐसा नहीं जाता, जिसमें वह मनुष्य से लेकर नाना जीव-

चारियों का भक्षण न करती रहती हो।

कमलेश सोचा करता था, 'लेकिन यह चित्र का एक ही पहलू है। दूसरे पहलू की ओर देखा जाए, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यही मृत्यु सृष्टि की पृष्ठभूमि भी है। आदमी मरे नहीं तो फिर उसकी कोख में जन्म कैसे ले, जिसकी गोद अब तक सूनी रही है। फिर स्वार्थरत लोग जीवन-काल में जिसको सदा उपेक्षा और तिरस्कार से लांछित-अपमानित करते रहते हैं, मृत्यु जब उन्हें छीन लेती है तब वही लोग उसके लिए रोते और पछताते हैं। बुराइयों के मान दब जाते हैं और भलाइयों के रूप उभर आते हैं। अर्थात् एक मृत्यु ही तो है जो एक न एक दिन समाज से संसार के तिरस्कृत वर्ग का उचित मूल्यांकन करवा के ही दम लेती है! तो कमलेश सोचता था कि इस प्रकार ध्यान से देखें तो प्रतीत होगा कि मृत्यु सर्वभक्षी डाइन ही नहीं है, समाज के लांछित, तिरस्कृत और दुखी-वर्ग की प्राण-पोषक मां भी है। पीड़ित मानवता को एक अवलंब देना, उसकी रक्षा करना भी उसीका धर्म है।

कमलेश की मां अब कभी-कभी सोचती थी कि उसने बड़ी बहू को वह प्यार दिया ही नहीं, जो उसका उचित अधिकार था। जितने दिन बहू रही, उसे सदा इसी बात का ध्यान बना रहा कि यह बेटी तो उसी बाप की है न, जिसने पूरा दहेज नहीं दिया। उस समय उसे कभी इस बात का ध्यान ही न आया कि इस विषय में बहू का क्या दोष है। यद्यपि अपने को निर्दोष समझने के लिए यह एक अच्छा बहाना उसको मिल गया था कि यह वह थोड़े ही जानती थी कि अबकी गई हुई बहू इस घर में फिर लौटेगी ही नहीं। कोई यह कैसे जान सकता है कि कोई व्यक्ति यदि कहीं जा रहा है तो अब सदा के लिए जा रहा है?

इस प्रकार अपने ढंग का यह एक पश्चात्ताप उसकी अन्तरात्मा में एक चिरन्तन व्यथा का विषय बन गया था। फलतः जब कभी वह कमलेश के मुख की ओर देखती तब प्रायः उसे उसी बहू की याद हो आती। उसके मन में यह एक ऐसा घाव था, जो भरने में न आता।

इसी कारण वह कमलेश से विवाह करने की बात उठाती हुई सदा डरती रहती थी। सदा उसके मन में एक ही बात आया करती, 'उसके विवाह के लिए उससे किस मुंह से कहूं ?' कभी-कभी इस तरह की बातों का ध्यान आते-आते वह स्वयं अपनी आंखें पोंछने लगती।

एक-आध बार पिता ने जो चर्चा चलाई भी कि 'बेटा, वह लखुनावाले फिर आए थे और विवाह के लिए बड़ा ज़ोर दे रहे थे। कहते थे कि वे हमारी सभी मांगें पूरी करने के लिए तैयार हैं।'

उनका इतना कहना था कि कमलेश कोई उत्तर दिए बिना तुरन्त उठकर बाहर चला गया था।

यद्यपि कमलेश के ऐसे मूक, जड़, निष्ठुर व्यवहार से वे बड़े दुःखी रहते थे; लेकिन भीतर ही भीतर यह अनुभव भी करते थे कि इसके मूल में वे हैं; उनके अपने कर्म हैं। यह स्थिति उनके ही कारण उत्पन्न हुई है—उसकी इस विरक्ति का मूल आधार उनके ही क्षुद्र विचार रहे हैं। जब उसके माता-पिता की यह स्थिति थी तब उसके छोटे भाई और बहिन इस विषय में कुछ कहने का साहस कैसे कर सकते थे!

कमलेश के मानस में कभी-कभी ऐसे प्रश्न भी उठा करते, जिनका उत्तर वह अपने ही भीतर खोजा करता। 'जिस समाज के भीतर विधवा को इतनी भी मान्यता न दी जाती हो कि वह स्वाभाविक रूप से जीवन-यापन करने की अधिकारिणी बने, क्या वह सभ्य कहा जा सकता है ? फिर एक-दो व्यक्ति नहीं, सारे का सारा समाज इस विषय में मौन रहता है! विधवा-विवाह का प्रश्न उठते ही जिस समाज की नानी मर जाती हो, उसकी अधोगति क्यों न हो ? उसके अन्दर ही अन्दर वेश्या-वृत्ति जैसा व्रण नासूर का रूप क्यों न धारण करे!'

कभी-कभी वह यह भी सोचता कि, 'हमारे समाज में न्यायानुमोदन की कैसी दुर्गति है! लोगों के मन में यह प्रश्न ही नहीं उठा करता कि वर्ष-दो वर्ष के बाद कोई नव विधवा अपने माता-पिता, भाई-भावज के घर में क्यों पड़ी है। क्यों लोगों ने समझ लिया कि मानव-धर्म मर

गया ?' इसी प्रकार वह यह भी सोचता, 'वयस्क हो जाने पर लड़की-लड़कों के विवाह-सम्बन्ध में अभिभावक जन अनुचित हस्तक्षेप क्यों करते हैं ? समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग उस हस्तक्षेप के सम्बन्ध में मौन ही नहीं रहता, प्रायः उसका समर्थन भी करता है ।'

दो-चार ऐसे भी उदाहरण उसके सामने थे, जब किसी विधवा की सारी सम्पत्ति भाभी ने अपने अधिकार में कर ली थी । इस कारण उस विधवा का जीवन उसके यहां एक दासी के रूप में परिणत हो गया था । इस दुर्गति के कुछ ऐसे भी परिणाम हुए थे, जो अत्यन्त दुःखद और बीभत्स थे । विधवा पागल हो गई थी और जब उसकी कोई चिकित्सा न हो सकी तो एक दिन कुएं में गिरकर उसने अपने प्राण खो दिए थे । कालान्तर में उसका पुत्र आवारा बनकर शहर चला आया था और पाकेटमारों के दल में मिल गया था ।

इन घटनाओं और परिस्थितियों ने उसके मानस-यंत्र को इतना अस्त-व्यस्त कर डाला था कि जब कभी कोई सफेदपोश सहयात्री डबडबाई आंखों से अपनी जेब कट जाने की कहानी सुनाने लगता, तब उसी क्षण कोई उसके कानों में कहने लगता था, 'बहुत ठीक हुआ ! यह व्यक्ति उसी रूढ़िवादी समाज का एक अंग है, जो अपनी विधवा बहिन, बेटी को दासी बनाकर रखता है ।'

जब वह पूजा के समय भगवान का ध्यान करने बैठता तो कभी-कभी इन्हीं प्रसंगों के चित्र उसके मानस पर उतर आते । प्रतिच्छायाओं की मर्मवाणी फूट पड़ती, 'परमपिता, तुम सब देख रहे हो !'

इन अवस्थाओं में दोनों प्रकार के चित्र उसकी परिकल्पना में आया करते । एक ओर अगर अनाथ, दीन, दुखियों की आंखों से टपकते हुए आंसू रहते तो दूसरी ओर उन सफेदपोशों के आंसू, जिनकी जेब कट जाती या जि के घरों में सेंध लग जाती । इसके विपरीत वह कभी-कभी ऐसे चित्र भी देखता, जब भ्रष्टाचार से आया हुआ रुपया, कोई आदमी अपनी धर्मपत्नी को देता हुआ प्रसन्नता से कहता, 'अब आज प्रदर्शनी जाकर

अपने मन की साड़ी ले आना।'···कोई पाकेटमार अपने दोस्तों के साथ बैठा पैग पर पैग ढालता हुआ गाने लगता, "आवारा हूं···दुनिया-भर से न्यारा हूं।"

उपासना की घड़ियों में इन दोनों प्रकार के चित्रों के साथ कमलेश मन ही मन कह उठता, 'परम पिता तुम सब देख रहे हो !'

प्रबोधबाबू के घर रात को लेटे-लेटे वह इस प्रकार स्मृतियों में डूबा था कि सहसा उसे दमयन्ती की याद हो आई। कुछ दिन पूर्व एक दिन कमलेश ने सुना कि पिछले माह एक डी० एस्० पी० के साथ दमयन्ती की सिविल मैरेज हो गई, तो उसे कुछ आश्चर्य हुआ था। क्योंकि उसे मालूम था कि वह जब बी० ए० में पढ़ती थी तो उसका लगाव अपने एक सहपाठी के साथ हो गया था। कमलेश को उसका नाम अब भी याद आ रहा है—उसे तिवारी कहते थे। उन दिनों दमयन्ती की तिवारी से खूब छनती थी और वह अक्सर उसे अपने घर चाय पर भी बुलाया करती थी। एक तरह से यही तय हो गया था कि वह विवाह करेगी तो तिवारी के साथ।····'तो फिर यह सब कैसे हो गया ? हो सकता है कि तिवारी के सम्बन्ध में दमयन्ती के घरवालों ने रुकावट डाली हो या कि दमयन्ती ही तिवारी से दूर रहने लगी हो !'—उसने सोचा और उसका मन दुविधा में पड़ गया। और दो या तीन मास ही बीत पाए होंगे कि कमलेश को यह सुनने में आया था कि दमयंती को उसके डी० एस्० पी० पति ने अपमानित करके घर से बाहर निकाल दिया है। इस दुस्समाचार के साथ उसने यह भी सुना कि तिवारी ने किसी तरकीब से पहले उस डी० एस्० पी० से परिचय प्राप्त किया। फिर क्लब में उसके साथ बैठ-बैठकर सम्पर्क और सान्निध्य स्थापित किया और अन्त में दमयन्ती के दो-चार प्रेम-पत्र भी उसके सामने खोलकर रख दिए, जिनके अन्त में उसका स्पष्ट नाम तो न था, था केवल इतना—

'तुम्हारी कोई'।

इन पत्रों के साथ तिवारी ने उसकी नोट-बुक के कुछ पृष्ठ भी सामने

रखकर कह दिया, 'अब आप दोनों का राइटिंग मिला लें।'

इस कथन के साथ तिवारी ने एक अट्टहास के साथ कह दिया, 'यह आस्था का प्रश्न नहीं, अस्तित्व का प्रश्न है। हा-हा-हा-हा!"

तो उपासना के समय कमलेश कह देता—'परम पिता, तुम सब देख रहे हो!...'

कमलेश को कभी-कभी क्रोध भी आता था—यह जो चोर, ठग, धूर्त, मायावी, कपटी, द्वेषी, लुटेरों का दस्यु-दल है क्या इसका सर्वनाश सम्भव नहीं है? हमसे कहा जाता है कि हमारे देश में, माना कि भ्रष्टाचार है मगर अन्य देशों की अपेक्षा कम है। यहां प्रश्न उठता है कि देश के स्वाधीन हो जाने से पूर्व भ्रष्टाचार क्या इससे कम नहीं था? और अब अधिक क्यों हो गया है? क्या इसके मूल में उस समुदाय के रंगे हाथ नहीं हैं, जो अवसरवादी है? आज इस समाज के अन्दर देश-भक्ति का ऐसा कौन-सा रूप शेष है जिसे हम बहुजनहिताय कह सकें? इस प्रकार के कथनों से तो भ्रष्टाचार कम नहीं हो सकता। यह उत्तर वस्तुस्थिति की यथार्थ व्याख्या नहीं, शासकीय कूटनीति का एक लक्षण-मात्र है। सो भी बहुत भोंडा और अपरूप! ऐसे विचार वही लोग प्रकट करते हैं जिनका अपना समाज भ्रष्टाचार के कलुष से लिप्त और संलग्न रहता है।

इस सम्बन्ध में जब लोग सरकार को दोष देते, तब कमलेश का उत्तर होता—जनता के हित और कल्याण के समस्त कार्य सरकार पर नहीं छोड़े जा सकते। अपना नैतिक स्तर तो उसे स्वयं बनाना और ऊंचा करना पड़ेगा। यह ठीक है कि अपनी रक्षा के लिए हम सरकारी कानून को अपने हाथ में नहीं ले सकते। परन्तु यह भी उतना सही है कि हम धूर्तों और बदमाशों, दुष्टों और सामाजिक अपराधियों के प्रति अहिंसात्मक घृणा प्रकट कर सकते हैं। घृणा न सही, सामाजिक उपेक्षा और बहिष्कार तो कर ही सकते हैं। लेकिन आज किसीकी दृष्टि इस ओर नहीं है।

कमलेश इस सम्बन्ध में अक्सर सोचा करता कि जनता की शक्ति

आज उस दल के हाथ बिक गई है, जो सत्ताधारी है, जिसका दृष्टिकोण केवल सत्ता पर आरूढ़ रहना है। नैतिकता के मान उन्नत हों, मनुष्य-मात्र को अपने मानसिक विकास के लिए पूरा अवसर मिले। ठगी और बदमाशी का इतना आधिक्य न हो जाए कि जनसाधारण की शान्ति और व्यवस्था के सारे साधन संकटापन्न हो उठें—इस ओर किसीकी दृष्टि नहीं है। आज तो स्थिति यह है कि जिसे हम भद्र लोगों का समुदाय मानते हैं जो सफेदपोश कहलाता है, उसके नायक भी चोर और उठाई-गीरों के रक्षक बने रहते हैं। और यह कितने आश्चर्य और परिताप का विषय है कि समाज इसे सहन करता है। आज पीतल को सोना कहा जाता है और समाज टुकुर-टुकुर देखता रहता है!

कमलेश ने अपनी आंखों से देखा, अपने कानों से सुना, अपनी बुद्धि से तोला और विवेक की कसौटी पर परखा, अनुभव किया कि पुलिस के जो कर्मचारी बहू-बेटियों का शील भंग करते हैं, विभागीय स्तर पर उनके साथ भी न्याय, दण्ड का समुचित उपयोग प्रायः नहीं होता है। इस व्यवस्था के मूल में जो नीति काम करती है उसका उद्देश्य रहता है शासकीय प्रतिष्ठा का संरक्षण। कमलेश इस स्थिति को देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए चिन्तनीय मानता था।

इन्हीं सब बातों और समस्याओं पर विचार करने के लिए वह अपने बन्धु निर्मलचन्द्र से मिलने आया था। वह यह कल्पना भी न कर सकता था कि अपनी यात्रा में, उसे एक ऐसा परिवार मिल जाएगा, जो, उसके मानस को कुछ घड़ियों के लिए बहक में डाल देगा।

प्रातःकाल वह सोकर उठा और नित्य-क्रिया से निवृत्ति पाकर ज्योंही वह चाय पर बैठा, त्योंही उसने प्रबोधबाबू को बहुत गंभीर और उदास देखकर उनसे एक प्रश्न कर दिया, "सच-सच बतलाइएगा, आपको

अपने जीवन से क्या शिकायत है ?"

प्रबोधबाबू यह कहते-कहते रुक गए, "यह कुछ बात हुई !" फिर एकाएक गंभीर होकर, कुछ क्षणों के बाद एक निश्वास लेते हुए बोले, "मैं जानता था कि आपसे-आप यह प्रश्न आपके मन में उठेगा। मैं यह भी जानता था कि बिना बतलाए और किसी प्रकार का कोई संकेत किए, आप मेरे भीतर-बाहर का सारा मर्म जाने बिना नहीं रह सकते। लेकिन इस सम्बन्ध में बात करने के लिए हमें एकान्त चाहिए।"

अभी ये बातें चल ही रही थीं कि लीला नहा-धोकर नवीन वेश-भूषा में आकर कमरे के द्वार पर ठिठक गई। स्वामी का अन्तिम वाक्य उसने सुन लिया था। जो अब कह रहे थे, "मैं फिर किसी दिन, बल्कि हो सका तो कल ही आपका थोड़ा-सा समय लूंगा।"

कमलेश बोला, "आओ, आओ न भाभी !" उसने लक्ष्य किया—वे वास्तव में रूपसी हैं। पर तभी उसे भगवान कृष्ण के उस स्वरूप का ध्यान हो आया, जिसमें वे द्रौपदी को आश्वासन देते हुए उसके आंसू पोंछते हैं।

लीला हवाई चप्पल पहने हुए कमरे के अन्दर आ पहुंची और जो कुरसी खाली पड़ी हुई थी, उसकी पीठिका पर दोनों हाथ रखकर खड़ी हो गई।

प्रबोधबाबू कुछ नहीं बोले। पर कमलेश ने कह दिया, "बैठो, खड़ी क्यों हो ?"

तब बिना कोई उत्तर दिए लीला कुर्सी पर बैठ गई। सामने टेबिल पर, एक रुईदार स्वच्छ छींट के आवरण से ढकी हुई चाय गेंडुए में रखी हुई थी। आवरण उठाकर वह चुपचाप चाय ढालने लगी।

तभी कमलेश ने कह दिया, "रात को पानी तो बरसा ही था, ओले भी गिरे थे।"

लीला यह कहती-कहती रुक गई कि 'फिर जब प्रकृति का रोष शान्त

हो गया, तब अन्त में चांदनी छिटकी थी और तारे मुस्कराए थे। भक्त मंदिर की सीढ़ियों पर क्षण-भर रुक गया था। द्वार बन्द थे। देवता सो गया था।'

तभी प्रबोधबाबू बोले, "हम लोग जग रहे थे, बल्कि आपको देखने के लिए आना भी चाहते थे। लेकिन बिजली चली गई थी, इसलिए फिर टाल गए।"

एक उत्साह के साथ चाय का कप लीला ने पहले कमलेश के आगे बढ़ाया, फिर स्वामी के।

तभी छज्जे की मुंडेर पर बैठा कौआ बोलने लगा और लीला मुस्कराने लगी।

गोभी के फूल की पकौड़ियां और बिस्कुट प्लेटों में रखे हुए थे। एक डिश मेवे की भी थी।

लीला बोली, "कहते हैं, जब मुंडेर पर बैठकर कागा बोलता है, तब कोई मेहमान घर में आता है और आप जा रहे हैं?"

वह सोच रही थी, 'ऐसे ही अवसर पर स्वामी कहा करते हैं, 'यह कुछ बात हुई!' '

कमलेश हंसता-हंसता बोला, "आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर। सदा से यही होता आया है।"

तब तक लीला ने दोहे का दूसरा चरण भी कह दिया, "कोई सिंघासन चढ़ा, कोई पड़ा जंजीर।" फिर साथ में जोड़ दिया, "ऐसा भी तो होता आया है।"

प्रबोधबाबू ने सहज भाव से कह दिया, "यह तो आप ठीक कहते हैं।"

अब उनके हाथ में काजू था।

तब कमलेश ने उसकी बात पर ध्यान न देकर चाय की चुसकी लेते हुए कह दिया, "आज की चाय में तो, जान पड़ता है, कोई खुशबू भी पड़ी है।"

प्रबोधबाबू ने बतलाया, "हां, यह इनकी अपनी रुचि की वस्तु है। आपको कैसी लगी ?"

कमलेश ने झुकी पलकें उठाकर उत्तर दिया, "रुचिकर।"

तभी लीला ने प्रश्न कर दिया, "अब आप कब आएंगे ?"

प्रबोधबाबू ने टोक दिया, "चाय के साथ कुछ लेते भी जाइए।"

कमलेश एक पकौड़ी उठाते हुए बोला, "अब तो आप लोग हमारे यहां आएंगे।"

"आपके यहां ?" लीला के प्रश्न में आश्चर्य था।

कमलेश ने अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा, "तुम समझती हो, यहां मेरा कोई नहीं है ! अरे, मैं निर्मल के यहां ठहरा हूं। वह मेरा बन्धु है। क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं कि मैं आप लोगों को उसके यहां आमंत्रित कर सकूं !"

'मेरा यहां कोई नहीं है'—उसके इस कथन ने लीला के मर्म को छू लिया।

प्रबोधबाबू ने उत्तर में कह दिया, "क्यों नहीं है, क्यों नहीं है ! हम लोग भी तो आपके हैं। आप पता नोट करवा दीजिए, हम लोग वहां पहुंच जाएंगे।"

कमलेश बोला, "लिखिए।"

प्रबोधबाबू ने पता नोट कर लिया। लीला कुछ नहीं बोली। लेकिन वह पते के एक-एक शब्द को ध्यान से सुनती रही।

इतने में हरी एक डिश में बहुत-सी पकौड़ियां ले आया। प्रबोधबाबू ने वह डिश ज्यों की त्यों टेबल पर रख ली और कह दिया, "बस जाओ।"

जब चायपान समाप्त हुआ तो लीला बोल उठी, "हमारे बड़े भाग्य थे कि आपसे परिचय हो गया। लगता है इस संयोग से, आप हमको ऐसा कुछ दिए जा रहे हैं, जिसको हम कभी भूल न पाएंगे।"

कमलेश को ऐसा जान पड़ा, जैसे यह उस समर्पिता की वाणी है जिसमें

कहीं कोई कृत्रिमता नहीं रहती। इसमें ऐसा कुछ अप्रतिम माधुर्य है, जो अपने-आपमें परिपूर्ण और विरल है।

तब आपसे-आप उसकी पलकें झुक गईं। नयन मीलित हो गए।

दोनों उसे देखते रह गए, इकटक, स्तब्ध।

उसका एक हाथ घुटने पर था, दूसरा बायें जानु पर। श्वास सामान्य गति से चल रहा था, सिर स्थिर, अडिग; तद्वत्। होंठ बन्द थे और श्वास धीरे-धीरे मूर्धन्य होता जा रहा था।

अब लीला अपनी कुरसी से उठकर प्रबोधबाबू की ओर देखती हुई बोली, "तुमने कल जो बात कह डाली थी, क्या मैं जान सकती हूं, उसका क्या अर्थ होता है?"

प्रबोधबाबू यों भी स्तंभित थे। अब लज्जित और पराभूत हो उठे। वे भी फिर खड़े होकर द्वार पर आ गए और धीरे से बोले, "वह बात उसी समय समाप्त हो गई थी, जब तुमने उसका वैसा निर्दय उत्तर दे डाला था। लेकिन ये तो पूरे महात्मा निकले। मैं ऐसा कुछ नहीं जानता था। इनको समझने में कल मुझसे बड़ी भूल हो गई। अब उसका प्रायश्चित्त किए बिना गति नहीं है।"

वे भीतर ही भीतर कम्पित हो उठे।

"पर अब हम यहां से कहीं जा भी तो नहीं सकते।" लीला बोली, "जब तक ये अपनी पूर्व स्थिति में नहीं आ जाते, तब तक हमें यहीं बैठना चाहिए।" वह सोच रही थी, 'कल अपने समाधान से इन्होंने मेरी जो रक्षा की है, वह मेरे लिए सर्वथा अद्भुत और अलौकिक है।' फिर एकाएक उसे ध्यान हो आया, 'सुनती हूं पुरातन काल में अपने यहां सम्मोहन विद्या अपनी पूर्ण विकसित स्थिति में थी—ऐसा भी तो हो सकता है, यह उसीका कोई प्रयोग हो।'

प्रबोधबाबू ने अन्दर जाकर हरी से कह दिया, "चाय सामग्री चुपचाप वहां से उठा ले जाओ।" फिर वे एक दरी लाकर उत्तर की ओर बिछाने लगे।

लीला भीतर से अगरबत्ती का बण्डल ले आई, उससे अगरबत्तियां निकालकर, कमरे के चारों कोनों पर रखे ऊंचे स्टूलों की मूर्तियों में विधि-पूर्वक खोंसकर सुलगा दिया।

फिर दोनों दरी पर बैठकर कमलेश की ओर ध्यान से देखने लगे।

अब कमरे में धूप छिटक आई थी।

इतने में कमलेश ने आंखें खोल दीं, और प्रसन्नता के साथ दंत झलकाते हुए कह दिया, "तो अब आज्ञा दीजिए।"

तभी प्रबोधबाबू उसके चरणों पर झुक पड़े। लेकिन कमलेश ने तुरन्त उन्हें दोनों हाथों से रोकते हुए वक्ष से लगा लिया। उसके दोनों हाथ प्रबोधबाबू की पीठ पर थे और लीला आंसू पोंछ रही थी।

प्रबोधबाबू कुछ सोच-विचार में लीन थे कि सहसा उठे और बोले, "ज़रा ठहरिए। मैं अभी आया।" और अन्दर चले गए।

अवसर देखकर लीला ने पूछा, "एक बात बताएंगे ?"

"क्यों नहीं ?"

"कल रात कैसा लग रहा था ?"

"यह मत पूछो भाभी। भगवान ने बड़ी रक्षा की।"

"इस मामले में भी तुम भगवान को नहीं भूल पाते !"

"पाप के समय भगवान का स्मरण कर लेने से बड़ा बल मिलता है। बहुधा हम पाप से बच जाते हैं।"

"जीवन के साथ यह तुम्हारा कितना बड़ा अन्याय है ! आनन्द और सुख की हर घड़ी पवित्र होती है। और तुम उसमें पाप देखते हो ! ऐसा ही था, तो तुमने मेरी रक्षा क्यों की ? मेरे लिए इतना झूठ क्यों बोले उनसे ?"

"सच पूछो तो मैंने अभी तुम्हारे लिए कुछ नहीं किया। तुम्हें पता होना चाहिए कि प्रेम का कोई प्रतिदान नहीं होता। इस विषय में विजेता मैं उसको मानता हूं, जो प्रेम करता है।"

"तब तो इस मामले में जीत तुम्हारी ही हुई ?"

"मेरी कैसे ? तुम्हारी न हुई !"

"क्यों ? रूमाल की बात भूल गए ?"

"भूल तो नहीं गया। पर वह तो एक भूल थी, अज्ञानावस्था की।"

"मुझे विश्वास नहीं होता। खैर, तुम कहते हो, तो माने लेती हूं। अच्छा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि दो दिन बाद फिर यहीं आ जाओ। मुझे आज न जाने कैसा लग रहा है।"

इतने में प्रबोधबाबू आ गए और लीला आंसू पोंछने लगी।

५

बिस्तर और सूटकेस आदि सामग्री लेकर जब कमलेश निर्मल के यहां पहुंचा, तब नौ बज गए थे। वृक्षों और मकानों की चोटियों पर धूप हंस रही थी, बस-केन्द्रों पर छात्रों और दफ्तरों के बाबू लोगों के लम्बे क्यू लगे हुए थे और प्रमुख राजपथों पर कारों और आटो-रिक्शाओं का तांता बंधा हुआ था। निर्मल अपने कार्यालय जाने के लिए तैयार हो रहा था। कमलेश को सामने आया जान वह हाथ में बंधी घड़ी की ओर देखता हुआ बोला, "अब इस वक्त तो मैं दफ्तर जा रहा हूं। कल जो योजना निश्चित हुई थी, उसको तुम आज विधिवत् लिख लेना। मैंने उन सब लोगों को सायंकाल सात बजे बुलाया है। अवसर मिला तो मैं भी कुछ सोचकर नोट कर रखंगा। सूचना के अनुसार, आशा है, सब तैयार होकर आएंगे। मैं अधिकारीजी से भी मिल लूंगा और हो सका तो उन्हें साथ लेता आऊंगा।"

कथन के साथ निर्मल अलमारी में लगे हुए शीशे के सामने आ पहुंचा, और टाई की तिरछी ग्रंथि कुछ सीधी करने लगा। फिर रूमाल निकालकर मुंह पोंछा और उसे पैंट की जेब में डालते हुए जा ही रहा था कि कमलेश बोल उठा, "मैं तो अपना काम कर ही लूंगा। लेकिन तुम दफ्तर से छुट्टी पाने के बाद कहीं रुकना नहीं। अधिकारीजी को साथ ले चलने में कुछ देर होती जान पड़े तो उनकी प्रतीक्षा में रुक मत जाना। साथ ले चलने के लोभ में पड़कर स्वयं अपने कार्य में देर कर देना मुझे पसंद नहीं, चाहे वह कोई हो।"

उसकी इस बात को सुनकर निर्मल मुस्कराता हुआ बोला, "अच्छा,

अच्छा । मैं सब समझ रहा हूं ।" और कमरे के बाहर हो गया ।

कमलेश ने देखा, "खुले द्वार से कमरे के अन्दर आती हुई धूप का ज्वलन्त आलोक आंखों को सहन नहीं हो रहा है । इसलिए उसने दोनों किवाड़ भेड़ दिए । किवाड़ों का एक पल्ला हवा के आघात से थोड़ा खुल गया ; दोनों किवाड़ों के बीचवाली संधि से प्रकाश की एक पतली रेखा दीवार पर चमक गई है । फिर धूप की किरण की ओर उसका ध्यान चला गया, जिसमें छोटे-छोटे कण उड़ते और रेंगते जान पड़ते थे । एक क्षण चुपचाप खड़ा रहकर वह उस प्रकाश-रेखा को ध्यान से देखने लगा।

तभी सहसा उसे ध्यान हो आया कि कमरे में उसे अकेला जानकर पवन के एक साधारण झोंके ने, इस दीवार पर चुपके से प्रकाश की पतली रेखा बना दी !—जड़ प्रकृति भी क्रीड़ा-कौतुक से कितनी अनुप्राणित रहती है ! तभी उसे तारिणी की याद हो आई । 'मैं जब ठहरने पर राज़ी न हुआ, तो उसने कहा था—इतने बड़े जीवन-क्रम में एक रात कोई व्यवधान नहीं डालेगी !'

'ना, उस रात की बात और नहीं सोचूंगा ।' मन में आते-आते जान पड़ा, आंखों में आंसू आ ही जाएंगे ।

इसी क्षण रानी एक वर्ष का शिशु गोद में लिए आ पहुंची । उसका ब्लाउज़ इतना चुस्त था कि वक्ष-प्रांत का उन्नत गौरव उन्मत्त होता जान पड़ता था । साड़ी के ऊपर जो स्वेटर वह पहने हुए थी, उसमें उसकी ग्रीवा के नीचे का भाग असामान्य रूप से अनावृत था । रह-रहकर एक ही बात उसके मन में घूर्णन करने लगती, 'हां, तो तुम रूप-गर्विता हो ।'

तभी हाथ जोड़कर रानी ने कह दिया, "नमस्ते भाई साहब ।"

कमलेश के मुख से निकल गया, "प्रणाम ।"

संकोचवश उस समय उसकी दृष्टि सामने नहीं हो पाती थी । इस प्रकार का अभिवादन यद्यपि उसके लिए नया था, फिर भी उसकी ओर ध्यान दिए बिना रानी ने बच्चे से कह दिया, "दादा को नमस्ते करो

आनन्द ।"

उसने आनन्द के दोनों हाथों को उचकाते हुए संकेत के प्रकार में थोड़ा छू भी दिया।

कमलेश को, आनन्द की ओर उन्मुख होने में, रानी की ओर देखना ही पड़ा। नयनों के कोरों की कज्जल-धार देखकर उसने आनन्द की ओर दृष्टि कर ली। उसके होंठ अब एकदम से खुल गए थे, वह हंसने लगा था।

तभी कमलेश ने हाथ उठाकर कह दिया, "जय हो, विजय हो।"

अब आनन्द हाथ जोड़ता हुआ उसे नमस्ते कर रहा था।

कमलेश ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कह दिया, "जियो बेटा, जुग-जुग जियो।"

तब तक रानी बोल उठी, "खाना बनने में तो अभी देर है। जाऊं आपका नाश्ता ले आऊं ?"

"नहीं। मैं भाभी के यहां से नाश्ता करके चला हूं।" उसकी दृष्टि विनत थी, उसकी वाणी भी गंभीर थी।

"ये भाभी कौन हैं, मैं जान सकती हूं ?" रानी के प्रश्न के ढंग में तेवर झलक उठा।

कमलेश ने जेब से सिगरेट निकाली, मैच-बाक्स के ऊपर ठोकते हुए उत्तर दिया, "उनको आप नहीं जानतीं। इस बार की यात्रा में ही उनसे ऐसा कुछ परिचय हो गया कि मैं उन्हें भाभी कहने लगा।"

रानी कपोलों में हंस पड़ी। बोली, "इतनी जल्दी आप किसीको भाभी बना सकते हैं, इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता। क्या वास्तव में वे बहुत सुन्दर हैं ?"

कमलेश के मन में आ रहा था, 'मैंने इनको अब तक भाभी नहीं कहा है। उसीकी यह प्रतिक्रिया तो नहीं है ?'

"देख लेना। मैं उन्हें यहां आने के लिए निमंत्रित भी कर आया हूं।"

कमलेश सहज भाव से बोल रहा था। आंखों में आंसू अब भी भरे

हुए थे। तारिणी की याद भूल नहीं रही थी।

"मगर आंखों में ये आंसू कैसे ? कण्ठ भी कुछ भर्राया हुआ-सा जान पड़ता है। परसों जब आए थे, तब तो बहुत प्रसन्न दिखाई देते थे। रात को भाभी ने कोई इंजेक्शन तो नहीं लगा दिया ?"

कमलेश ने रूमाल निकालकर आंसू पोंछ डाले। फिर हंसते-हंसते कह दिया, "आज तो शायद न आएं। हां, कल या परसों आ सकती हैं।"

अब कमलेश सिगरेट पीने लगा था। और आनन्द ने अपना अंगूठा मुंह के अन्दर कर लिया था।

इतने में रानी बोली, "आप गरम पानी से नहाएंगे न ?"

प्यार से आनन्द की ओर देखता हुआ कमलेश बोल उठा, "ना दीदी, मैं सदा ठंडे पानी से ही स्नान करता हूं।"

"अच्छा, यह मैं दीदी कब से हो गई ?"

कमलेश ने अनुभव किया—उसके प्रश्न में एक माधुर्य है। उसके हास में आनन्द खेलता है। पर कमलेश ने कोई उत्साह नहीं दिखलाया। केवल इतना कह दिया, "इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? मैं भाई साहब हूं, तो तुम दीदी तो मेरी जन्मजात हो।"

बारम्बार यही सोच रहा था, 'परम पिता, यह जो कुछ भी सुंदर दिखाई देता है, सब तुम्हारा ही रूप है।'

"लेकिन मैं तो आपसे बहुत छोटी हूं।" रानी कहते-कहते रुक गई, 'आप क्या कहना चाहते हैं, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।'

"जिसको मैं दीदी कहता हूं, वह कभी छोटी नहीं हो सकती। बहुतेरी बातें हैं जिन्हें आस्था के बिना शायद नहीं जाना जा सकता।"

रानी विचार में पड़ गई, 'ये सदा सूत्र रूप में बोलते हैं।'

अब आनन्द उचककर कमलेश की ओर उन्मुख हो उठा, तो उसने उसे गोद में लेते हुए छज्जे पर जाकर सिगरेट फेंक दी और उसे पैर के जूते से मसल दिया।

रानी बिना कुछ बोले भीतर चली गई और कमलेश आनन्द को

खिलाता हुआ स्वयं उसके साथ खेलने लगा।

कमरे में निवाड़ से बुना हुआ एक पलंग पड़ा हुआ था और कमलेश की आदत थी, कि यात्रा ट्रेन की हो या बस की, स्कूटर की हो या फिर तांगे की ही, हाथ में कोई न कोई पत्रिका वह अवश्य रखता था। अतः कमरे में आते ही उसने एक पत्रिका पलंग पर डाल दी थी। आनन्द को लेकर जब वह उसी पलंग पर जा बैठा, तो उसने झुककर पत्रिका के आवरण पर झपट्टा मार दिया। उसका यह आक्रमण स्वाभाविक था और कमलेश को प्यारा भी लगा। वह उसे नोचने ही जा रहा था कि कमलेश ने पत्रिका उसके हाथ से छीनकर अपने पीछे रख ली। तब आनन्द उसको लेने के लिए घुटनों के बल उसके पीछे जाने लगा। कमलेश यही सब तो चाहता था देखना।

इतने में रानी रबर के निपलवाली कांच की शीशी, जिसमें दूध भरा हुआ था, एक तौलिया के साथ लेकर आ पहुंची।

कमलेश विचार में पड़ गया, 'तो आनन्द अपनी मां के उस स्तन्य-पान से भी वंचित रहता है जो उसका नैसर्गिक अधिकार है ?'

शीशी को रानी ने मेंटल-पीस पर रख दिया। फिर दोनों हाथ बढ़ाकर वह जो आनन्द को लेने लगी, तो क्या देखती है कि रंगीन आवरणवाला वह पन्ना नुचकर उसके हाथ में आ गया है। फलतः कपोलों और अधरों में हंसती-हंसती वह बोली, "आज तो मासिक पत्रिका का कवर ही फाड़ा है, कल यह आनन्द आपकी कोई कीमती चीज़ भी नष्ट किए बिना न मानेगा। बड़ा शैतान हो गया है।"

एकाएक पलंग से उतरते हुए कमलेश के मुंह से निकल गया, "कोई नई बात नहीं है। आनन्द हमेशा शैतान होता है।" फिर वह कुछ कहते-कहते रुक गया। नहीं तो शायद यह भी कह देता कि 'अपने रूप-सौंदर्य की गरिमा प्रदर्शित करने के लिए तुम्हीं किस-किस अस्त्र का प्रयोग नहीं करतीं ? मन की जिन लहरों को तुम आनन्द मानती हो, ध्यान से देखा जाए, तो क्या वे प्रमाद-परक आलम्बन नहीं हैं ?'

'····मन में आई बात कभी-कभी रोकनी भी पड़ती है। तुरन्त उसे कह ही डाला जाए, यह आवश्यक नहीं; बल्कि कभी-कभी तो वह एक दुरभिसंधि का आधार भी बन जाती है।' सोचता हुआ कमलेश कुछ संकुचित हो उठा।

रानी उसकी ओर इकटक देखती रह गई। बल्कि शीशी उसके हाथ में क्षण-भर स्थिर भी बनी रही।

कमलेश उसकी इस भाव-भूमि की कल्पना करता हुआ कुछ विचार में पड़ गया।

तभी झट द्वार के बाहर जाते हुए उसने कह दिया, "मैं अभी आया दस मिनट में।"

पलंग से उतरते समय उसने सोचा था, 'आनन्द के लिए कुछ खिलौने ले आऊं।' लेकिन फिर वह एक प्रतिक्रिया में पड़ गया, 'निर्मल के यहां ठहरना; सो भी उसकी अनुपस्थिति में····। ···हूं, आनन्द को ऊपर का दूध पिलाना रानी के लिए आवश्यक हो गया! ···जहां शारीरिक सौष्ठव और रूप-राशि का वैभव मातृत्व की अवमानना का आधार बन रहा हो, वहां कमलेश का ठहरना···।'

वह अभी सड़क पर आया ही था कि उसे स्मरण आ गया, 'भाभी ने कहा था, मुझे तुमसे कुछ कहना है।—फिर जब कहने की बारी आई, तो उन्होंने प्रस्ताव कर दिया कि तुम यहीं आ जाओ। हो सकता है वे जो कहना चाहती थीं, उसे छिपाकर उन्होंने यह बात कह दी हो। लेकिन फिर उन्होंने अन्त में यह कहकर सब कुछ स्पष्ट कर दिया—बाढ़ आने पर नदी की कोई धारा बहते हुए पेड़ को नहीं बतलाती कि मैं तुमको कितनी बार उलट-पुलटकर देखूंगी, प्यार से नहलाऊंगी, साथ ही साथ कहां तक बहा ले जाऊंगी, कुछ ठीक नहीं।—बात ठीक भी हो सकती है, लेकिन फिर आस्थाओं का क्या होगा? अस्तित्व के नाम पर हिंस्र पशु की भांति क्या हम सब हिंसा को प्रश्रय नहीं दे रहे हैं?'

साहस उसे स्मरण हो आया, 'तारिणी ने भी पहले कुछ प्रश्न ही उठाए थे, फिर उसका क्या परिणाम हुआ ? वह एकान्त की रात....'

फिर अचानक कमलेश को एक परिचित व्यक्ति ने टोका, "साहब, आपको बुलाया है।" और यह कहकर उसने स्लिप कमलेश को थमा दी। पढ़कर वह चुपचाप साथ चल दिया। वह आज अत्यधिक आत्मलीन था, इसलिए उसे नहीं मालूम कि वह किस तरह लीला भाभी के घर जा पहुंचा, उसे तो केवल इतना स्मरण आ रहा है कि कोई उसे स्कूटर पर बिठाकर ले आया है।

और अब जब वह स्नान करके, एक आसन पर बैठकर, आंखें मूंदे भगवान की उपासना में लीन होकर मुस्करा रहा है, तब लीला द्वार पर किवाड़ की ओट में खड़ी चुपके से उसे देख रही है। प्रबोधबाबू तिखंडे की छत पर एक चारपाई डाल हरी से मालिश करवा रहे हैं और जमुनी खाना बना रही है।

इस बीच लीला उसको दो बार देखने के लिए आई, लेकिन पूजन के समय कमरे के अन्दर आने का साहस उसे न हुआ।

प्रबोधबाबू जब नहा चुके तो कमलेश के निकट आकर उन्होंने कह दिया, "मैंने खूब सोचकर देख लिया, आप चाहे जो कुछ समझें। मैं आपको साझीदार बनाने को सहर्ष तैयार हूं।"

'लेकिन मेरे पास कोई पूंजी तो है नहीं और व्यवसाय के मामले में भावुकता से काम लेना मुझे कतई पसन्द नहीं।"

"आप पूंजी लगाएं ही, ऐसे कोई शर्त मेरी नहीं है। आपको केवल दुकान के काम की देख-रेख करनी पड़ेगी। मैं अपने कारोबार को अत्यन्त उच्च स्तर तक ले जाना चाहता हूं और मेरा विश्वास है कि आपकी भागीदारी से मेरी यह कामना पूरी हो जाएगी।"

कमलेश विचार में पड़ गया। वह यह कहने जा रहा था कि इस प्रकार की साझेदारी पर मेरा विश्वास नहीं है।

इतने में लीला ने आकर कह दिया, "तुम तो आस्थावादी हो।

वर्किंग पार्टनर की हैसियत से हमारे साथ रहने में तुमको कोई आपत्ति तो न होनी चाहिए।"

यूं तो इस प्रकार के प्रस्ताव से सहमत होना कमलेश के लिए कठिन था, लेकिन उसको ऐसा जान पड़ा, जैसे भाभी उसे चुनौती दे रही हो, 'तुम तो आस्थावादी हो' विशेष रूप से उसके ये शब्द, जैसे उसके गले में बांहें डालकर उससे पूछ रहे हों, 'क्यों, अब 'हां' क्यों नहीं कहते ? दिल्ली आकर रहने का यह आधार तुम्हें पसन्द नहीं आ रहा है ?'

तब उसने हंसते-हंसते कह दिया, "प्रलोभन तो बुरा नहीं है। अच्छी बात है, मैं आपके इस प्रस्ताव पर विचार करूंगा। लेकिन फिर आज शाम को नई दिल्ली में न्यूएरा होटल के टाप फ्लोर पर आ जाइएगा। हम लोग वहां एक सार्वदेशिक मानव-कल्याण-योजना पर विचार करेंगे। भाभी, तुम भी ज़रूर आना।"

लीला ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया, "तुम देख ही रहे हो, मेरा ज़ुकाम अभी ठीक नहीं हुआ। आज तो सिर में बड़ा दर्द भी है। ऐसी दशा में अगर मैं न आ सकूं तो तुम मुझे क्षमा नहीं करोगे ?"

"लेकिन मान लो, तब तक सिर दर्द अच्छा हो जाए, तब तो आओगी।"

लीला हंसने लगी और बोली, "मगर यह मान लेना तो बहुत कठिन है। तुम तो जानते हो, जीवन में ऐसी कितनी ही बातें आती रहती हैं, जो केवल मान लेने से पूरी नहीं हो जातीं।"

कमलेश के मन पर अब सहसा एक उदासीनता छा गई। वे सारी परिकल्पनाएं उसके मानस-पट पर मूर्तिमान हो उठीं, जिनका उल्लेख उसने अपनी कविता में किया था। तब सहसा उसके मुंह से निकल गया, "यह तो तुम ठीक कह रही हो।"

प्रबोधबाबू कुछ नहीं बोले। लीला के उत्तर पर वे अलबत्ता कुछ सोचने लगे। फिर चुपचाप उठकर किचन की ओर बढ़ गए।

लीला ने देखा, कमलेश की आंखें सजल हो उठी हैं।

निर्मल के घर में एक बड़े पिंजड़े के अन्दर खरगोश के बच्चे पले हुए थे। आनन्द की दृष्टि जो उसपर गई तो हंसते हुए उसने अपना दायां हाथ उसी ओर उठाकर तर्जनी से कुछ ऐसा संकेत किया मानो वह उसको भी पकड़ना चाहता है। रानी इस कल्पना से मुग्ध हो उठी। तभी आनन्द को गोद में लिए हुए उसको सहसा ध्यान हो आया, 'भाई साहब एकाएक इतनी जल्दी कैसे चले गए ?'

दोपहर हो गई, मगर कमलेश न आया। फिर सायंकाल के पांच भी बज गए। लेकिन वह न लौटा। उसके लिए बनाया हुआ खाना ढका हुआ ज्यों का त्यों रखा रहा। कई चीज़ें उसने बड़े उत्साह से बनाई थीं। अगर उसे मालूम होता कि भाई साहब थोड़ी देर में लौट आने की बात कहकर भी न लौटेंगे, तो वह खाना बनाने का खटराग ही क्यों पालती।

निर्मल साधारणतया साढ़े पांच तक दफ्तर से आ जाता था। उस दिन वह ठीक पांच बजे आ गया। आते ही उसने पूछा, "कमलेश नहीं दिखाई देता ?"

रानी ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया, "तुम्हारे जाने के बाद वे केवल दस मिनट ठहरे थे।"

"तो खाना खिलाए बिना ही तुमने उसे चला जाने दिया ?"

रानी ने सारी बात उसे बतलाते हुए अन्त में कह दिया, "दस मिनट में लौट आने की बात कह गए थे। पर आए अभी तक नहीं। मैंने कोई ऐसी बात भी नहीं कही, जो उनके सम्मान के विरुद्ध होती। मेरी समझ में नहीं आता, क्या बात हुई जो भाई साहब अब तक नहीं आए।"

ये बातें अभी हो ही रही थीं कि द्वार पर कुट-कुट का शब्द हो उठा। निर्मल ने पूछा, "कौन ?"

उत्तर मिला, "मैं हूं नरेन्द्र। मुझे कमलेशजी ने भेजा है।"

निर्मल जो द्वार पर पहुंचा तो नरेन्द्र ने एक चिट उसके सामने कर दी।

निर्मल उसे पढ़ने लगा। उसमें लिखा हुआ था :

"प्रिय निर्मल,

मीटिंग न्यूएरा होटल नई दिल्ली के टॉप फ्लोर पर होगी। द्वार पर नोटिस लगाकर वहीं चले आओ।

तुम्हारा—
कमलेश"

निर्मल जब उस सभा-कक्ष में पहुंचा तो उसने देखा—आमंत्रित व्यक्तियों में से अधिकांश लोग आ गए हैं। कुछ को तो वह व्यक्तिगत रूप से जानता था, कुछ उसके लिए सर्वथा अपरिचित थे। उस समय कमलेश से बात करने का समय न देख वह एक ओर चुपचाप बैठ गया।

पहले अधिकारीजी ने एक विदुषी की ओर संकेत करते हुए बतलाया, "ये प्राणदादेवी जबलपुर के एक माध्यमिक विद्यालय में मुख्याध्यापिका हैं। गत मास जब मैं जबलपुर गया था, तब मैंने इनसे इस योजना की चर्चा की थी। ये उससे कुछ ऐसी प्रभावित हुईं कि इन्होंने आने का आश्वासन दिया। प्रसन्नता की बात है कि इन्होंने अपने वचन का पालन किया। वास्तव में हमको ऐसे ही सच्चे सहयोगियों की आवश्यकता है।"

प्राणदादेवी का व्यक्तित्व कम प्रभावशाली न था। रंग गेहुआं, शरीर से तन्वंगी, मुखाकृति से गंभीर। कानों में मोतियों के टाप्स और नासिका में सोने की कील पर हीरे की कनी। काली जाली से आवृत्त जूडा, जिसपर सफेद सितारे टंके हुए। ग्रीवा में सोने की ज़ंजीर, चुस्त ब्लाउज़, जारजेट की साड़ी से मेल खाता हुआ। एक हाथ में सोने की चार चूड़ियां, दूसरे में छोटी-सी सुनहरी रिस्टवाच। बिस्कुटी रंग का बुना हुआ ऊनी शाल, आंखों पर चश्मा, जिसके लैन्स नीचे की अपेक्षा ऊपर ज़्यादा चौड़े और फ्रेम कुछ-कुछ लाल तथा गहरा कत्थई-मिश्रित और लहरदार। ग्रीवा के नीचे ब्लाउज़ के खुले अंश पर एक तिल।

प्राणदाजी परिचय के पहले मुस्कराईं और दंतपंक्ति झलकाते हुए

बोली, "बात यह है कि समाज में अपनी संस्कृति के प्रति जो अराजकता फैल रही है, धूर्तता, बेईमानी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, उसपर नियंत्रण की आवश्यकता हम सभी अनुभव कर रहे हैं। अगर ऐसा कोई कार्यक्रम बन सके, तो मैं उसमें अवश्य भाग लेना चाहूंगी, जिसमें हर मुहल्ले की ज़िम्मेदारी ऐसे कर्मठ और सच्चे व्यक्तियों को सौंप दी जाए, जो किसी ढंग और युक्ति से समाज-विरोधी व्यक्तियों की खबर लेते रहें, तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि जो समाज आज असामान्य रूप से अविश्वसनीय बनता जा रहा है, वही तब सामान्य रूप से विश्वसनीय दिखाई दे।"

कमलेश की दृष्टि सहसा नवागन्तुकों पर चली जाती थी। वह सोचता था—हो सकता है प्रबोधबाबू के साथ भाभी भी चली आएं।

अधिकारीजी की बगल में जो सज्जन बैठे हुए थे, उनकी ओर संकेत करते हुए निर्मलचन्द्र ने कहा, "आप हैं बिहार-निवासी श्री पन्नगारिसिंह, पटना के एक कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक हैं। आपके साथ मेरा परिचय अजन्ता में हुआ था। उसी यात्रा में इस योजना के विषय में आपसे कुछ बातें हुई थीं। आपको उन बातों का ध्यान बना रहा और आप समय पर आ भी गए इसके लिए हम आपके बड़े आभारी हैं।"

सिंहजी दोहरे बदन के और कुछ ठिगने थे। सिर के केश काफी घने और छल्लेदार थे जो अब खिचड़ी हो चले थे। रंग कुछ सांवला, बाएं कान पर एक मस्सा। फूले हुए रेशेदार ऊन का स्वेटर पहने हुए थे, जो अभी बिलकुल नया जान पड़ता था। बाईं कलाई पर बंधी हुई रिस्ट-वाच की ओर उनका ध्यान बार-बार चला जाता था।

परिचय के बाद आंसुओं से डबडबाई हुई आंखें पोंछते हुए सिंहजी बोले, "मैं आज की इस नई सभ्यता की चपेट में आया हुआ एक घायल व्यक्ति हूं। ऐसा दिन नहीं जाता कि आत्मघात करने की बात मेरे मन में न आती हो! मैं आदर्शवादी अवश्य हूं, लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मैं प्रगति-विरोधी हूं। आपको शायद मालूम न होगा कि मेरा विवाह हुए दो साल भी न हो पाए थे कि कुछ कारणों से मुझे

अपनी पत्नी को त्याग देना पड़ा।"

वे अभी अपनी बात पूरी कह भी न पाए थे कि उपस्थित लोगों में से एक व्यक्ति, जो बीड़ी पी रहा था, बोल उठा, "मुझे आपके साथ पूरी सहानुभूति है। पर आप यथार्थवादी हैं, आदर्शवादी कैसे हो सकते हैं ?"

सिंहजी के दांत अब अपने नीचेवाले होंठ के ऊपर आ गए थे। उन्होंने उत्तर दिया, "पहले मुझे अपनी बात तो पूरी कर लेने दीजिए।"

अब कमलेश को बोलना पड़ा, "इस समय यहां जो भी चर्चाएं चल रही हैं, वे अनौपचारिक हैं। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि हमारे साथी और बन्धु बीच में कोई टिप्पणी करने की अपेक्षा एक-दूसरे को पूरा समझ लेने का अवसर दें। हां, कहिए सिंहजी।"

सिंहजी बोले, "अभी हाल ही में उनको सरकारी नौकरी मिल गई है। लेकिन अपने वेतन का आधा भाग मैं उनको बराबर भेज रहा हूं।"

उनका इतना कहना था कि प्राणदाजी अपना स्लेटी कलर का वेनिटी बैग बंद करती हुई बोल उठीं, "क्या मैं आपके इस विच्छेद का मूल कारण जान सकती हूं ?"

सिंहजी ने जेब से रूमाल निकालकर आंखें पोंछते हुए उत्तर दिया, "अवश्य ! पर खेद है कुछ ऐसी व्यक्तिगत बातें हैं जिनकी चर्चा करने में मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। उनकी रुचियां ऐसी विचित्र थीं कि क्या कहूं। उनका रहन-सहन इतना संशयालु था कि मैं कभी-कभी सोच में सारी रात जागकर बिता देता था। मैं जब कालेज से लौटकर घर आता तो वे मुझे घर में प्रायः अनुपस्थित मिलती थीं। अब सहज ही आप सोच सकते हैं कि मेरे दिल पर क्या बीतती होगी, जब मैं घर लौटता हूंगा ! लेकिन मैंने बहुत तरह दी। मैंने उन्हें समझाया कि मैं मर्यादित ढंग से रहने का पक्षपाती हूं। मेरी अनुपस्थिति में ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिए, जो गृह-जीवन की साधारण शान्ति के लिए भी भयावह हो उठे ! अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए मैंने उनसे कहा था कि 'मैं ऐसे व्यक्ति का घर में आना, सो भी अपनी अनुपस्थिति में, कभी स्वीकार

नहीं कर सकता, जिसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, यहां तक कि परिचय भी नहीं। उसके साथ तुम्हारा कहीं आना-जाना भी मैं पसन्द नहीं करता।' किन्तु उनका कहना था—मैं ऐसे कालेज में पढ़ती थी, जो सह-शिक्षा का पक्षपाती था। अतएव जिसके साथ मेरा सहपाठी का नाता रह चुका है, मैं उसको अपने घर आने से कैसे मना कर सकती हूं ? फिर उसको भेजने के लिए बस-स्टैंड तक चले जाने में तो कोई बुराई है नहीं।"

इसी समय प्राणदाजी बोल उठीं, "आप बुरा न मानें, तो एक बात कहूं।"

अब सिंहजी के होंठ फड़कने लगे थे। उन्होंने उत्तर दिया, "एक नहीं, आप दस बातें कहिए। मैं बड़े प्रेम से सुनूंगा, लेकिन मेरी बात तो पूरी हो जाने दीजिए।"

उनकी इस बात पर प्राणदाजी मुस्कराती हुई बोलीं, "अच्छा-अच्छा, कहिए।"

अब सिंहजी पुनः बोल उठे, "हां, तो फिर मेरी श्रीमतीजी ने उत्तर दिया, 'यह मेरी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न है। आप इस मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकते।'"

प्राणदादेवी बिना बोले न रह सकीं, "वे बिलकुल ठीक कह रही थीं !"

सिंहजी कुछ गंभीर हो उठे। बोले, "बड़े खेद की बात है कि स्त्री होने के कारण आप उनका पक्ष ले रही हैं। खैर, कोई नई बात नहीं है। ज़माना ही वर्ग और वाद का है। हां, तो मेरा उनसे कहना था कि मैं आपके सहपाठी महोदय को अपने घर आने से मना नहीं करता, लेकिन उनको मेरी उपस्थिति में ही आना चाहिए। उन्होंने मेरी यह बात मान ली, और श्रीमान सभ्यताप्रसादजी के साथ मेरा परिचय हो गया !" उनकी इस बात पर कुछ लोग हंसते दिखाई पड़े। लेकिन सिंहजी ने अपना वक्तव्य जारी रखा, "लेकिन एक दिन की बात है, शायद वह

शनिवार का दिन था। कालेज से छुट्टी पाते ही मैं श्रीमतीजी को सूचना दिए बिना एक मित्र के साथ, मेटनी शो में सिनेमा देखने चला गया। पर वहां मैं खेल शुरू होने के थोड़ी देर बाद पहुंच पाया था। मेरी कुरसी भी सुरक्षित थी। लेकिन आप जानते हैं, सयोग सदा सदय ही नहीं हुआ करता; कभी-कभी वह अत्यंत निर्मम भी हो जाता है। अपनी सीट पर बैठने के दो मिनट बाद ही मैंने देखा कि आगेवाली पंक्ति के ठीक आगे, बिलकुल मेरे सामने, श्रीमतीजी अपने गुरुभाई के पार्श्व में विराजमान हैं। मैं इस परिस्थिति को भी शायद सहन कर लेता, लेकिन इसके बाद एक ऐसा भी क्षण आया, जिसको मेरी अन्तरात्मा सहन न कर सकी। आप जानते हैं, पूज्य बापू ने हमको अहिंसा का जो पाठ पढ़ाया है उसका प्रभाव बुद्धिजीवीवर्ग के मन से अभी तक गया नहीं है। मैंने सोचा— सिनेमा हाल में प्रदर्शित हो रहे पट-कथा नाटक के भीतर बिना रंगमंच के कोई एकांकी नाटक खेल डालना इस सभ्य जनता को सहन न होगा। इसके सिवा कौन जाने उसका क्या परिणाम हो! फलतः मैं मित्र से बहाना बनाकर बीच ही में उठकर चला आया।"

कमलेश कुछ नहीं बोला, लेकिन निर्मल उसीकी ओर देख-देखकर मुस्कराने लगा।

इसी समय सामने आई तश्तरी में से एक इलायची उठाती हुई प्राणदादेवी बोल उठीं, "यह एक ऐसी समस्या है, जिसको हमारा समाज अब तक चिरंतन सत्य कहता आया है। पर एक संपूर्ण जीवन-व्यापी निष्कर्ष और जीवन में कोई मोड़ देनेवाला खण्ड सत्य—इन दोनों स्थितियों में बड़ा अन्तर होता है। आप इस सभ्यता को चाहे जितना कोसें, पर हम जहां आ पहुंचे हैं, उससे पीछे तो लौट नहीं सकते। हां, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की रक्षा करते हुए, भावी समाज के एक नये रूप की कल्पना हम कर सकते हैं। मेरा अभिप्राय यह है कि अगर किसी दम्पति की आपस में नहीं पटती, तो उसे अलग हो जाना चाहिए। जीवन की बहुतेरी ग्रंथियां और कुण्ठाएं केवल अहंकार के कारण होती हैं। यह तो

ठीक है कि स्वाभिमान बहुत बड़ी चीज़ है। लेकिन फिर हमको इतना भावुक भी न हो जाना चाहिए।"

कमलेश गंभीर होता-होता बोल उठा, "प्राणदाजी का कथन बड़ा महत्त्वपूर्ण है; किंतु दाम्पत्य जीवन के विच्छेद में, मूल रूप में, कुछ ऐसी परिस्थितियां भी हुआ करती हैं, जो परस्पर संलग्न और अन्योन्याश्रित होती हैं। अतएव विचारणीय यह है कि एक-दूसरे की परवाह कितनी करता है, सुख-दुःख, वेदना-व्यथा, असुविधाओं के निवारण और अभि-रुचियों की सम्पूर्तियों में भागीदार कितना बनता है; मानवी समवेदना और सहानुभूति का उसका स्तर समन्वयवादी कितना है। लेकिन मेरे विचार से सबसे प्रमुख वस्तु है प्यार और आकर्षण की वह परितृप्ति, जिसके बिना कोई व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो, चाहे स्त्री कभी संतुष्ट नहीं रह सकता।"

सहसा अब कमलेश की आंखें प्रबोधबाबू के ऊपर जा पड़ीं। परंतु उनकी ओर से दृष्टि हटाकर अपने निकट बैठे हुए एक महानुभाव का परिचय देते हुए उसने कहा, "आप हैं श्री हेमेन्द्र मुखोपाध्याय। आप हावड़ा के एक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्राध्यापक हैं और मानवी पशुवृत्ति के विशेषज्ञ। इसी विषय के एक ग्रंथ पर आपको डाक्टरेट मिली है।"

हेमेन्द्र बाबू धोती, कुर्ता और शाल धारण किए हुए थे। कुर्ता कलाइयों में चिपका हुआ था, जिसमें दो-दो बटन लगे हुए थे। एकहरा बदन, गेहुआं रंग, लम्बी नासिका, भरा हुआ किंतु श्वेत केश-गुच्छ और रिंगलेस चश्मा जिसके लैंस मंद नील वर्ण के थे। उनके आगे एक स्टिक रखी हुई थी। उपस्थित मण्डली में वही सर्वाधिक वयोवृद्ध जान पड़ते थे।

परिचय हो जाने के बाद वे बोल उठे, "मैं जापान में अनेक वर्ष रह चुका हूं। मेरी धर्मपत्नी मोकोतानी एक जापानी रमणी है। भारतीय दाम्पत्य जीवन के आस्थावादी पक्ष पर, एक विश्वविद्यालय में मेरा भाषण सुनकर, वे मेरे प्रति पहले भक्त और फिर धीरे-धीरे पूर्ण आसक्त हो उठी थीं। उन दिनों मैं तोकियो में था। वहां के एक कालेज में वे

अध्यापन-कार्य करती थीं। पहले उन्होंने एक नोट-बुक सामने पेश करते हुए मेरा आॅटोग्राफ मांगा। आॅटोग्राफ के साथ एक न एक वाक्य लिख देना, तब तक मेरा स्वभाव बन चुका था। उस दिन भी मैंने स्वभावतः आॅटोग्राफ के साथ उसकी नोटबुक पर एक वाक्य लिख दिया, 'अमर बनने के लिए यह आवश्यक नहीं कि तुम अमित सुन्दर, सुखी और ऐश्वर्यमयी बनो। लेकिन यह बहुत आवश्यक है कि सत्य को पहचानो, भले ही कष्ट सहना पड़े।' "

उनके इस कथन पर कमलेश की पलकें झपक गईं। शेष लोगों में से बहुतेरे वाह-वाह कह उठे। लेकिन हेमेन्द्र बाबू का वक्तव्य बराबर जारी रहा। वे आगे बढ़ते हुए बोले :

"मैंने अपना आॅटोग्राफ और यह वाक्य अपनी बंगीय लिपि में लिखा था। नोटबुक देखने के बाद उसने मुझसे कहा, 'बड़ी कृपा हो, यदि आप जापानी भाषा में इस वाक्य का अर्थ मुझे समझा दें।' मैंने उसे समझा दिया। साथ में इतना और जोड़ दिया कि मेरा विश्वास है, अमित सौख्य और भोग-विलास का जीवन बितानेवाला कोई भी व्यक्ति, आज तक महापुरुष नहीं बना। इसके बाद उसने मेरे सामने एक प्रस्ताव रख दिया 'अगर किसी दिन आप मेरे यहां पधारने का कष्ट स्वीकार करें, तो यह आपकी मेरे ऊपर विशेष कृपा होगी।' मैं क्या बताऊं, मालूम नहीं क्यों, नारी-सौंदर्य ने मुझे कभी आकृष्ट नहीं किया। लेकिन मालूम नहीं क्यों, निश्छल नारी-प्रकृति से मैं सदा प्रभावित हो उठता हूं।"

इतने में प्राणदादेवी बोल उठीं, "एक्सिलैंट!"

और अधिकारीजी के मुंह से निकल गया, "क्यों न हो, प्रकृति ही सौंदर्य की जननी है।"

हेमेन्द्र बाबू से बिना टोके रहा न गया। वे बोले, "क्षमा कीजिएगा, प्रकृति सदा सौंदर्य की ही सृष्टि नहीं करती। वह अत्यंत कद्रूप और निर्मम भी होती है। शायद इसीलिए प्रतिक्रियाओं में जली-भुनी नारी कभी-कभी सर्पिणी भी बन जाती है!"

अब सिंहजी बिना बोले न रह सके, "वाह गुरुदेव, वाह ! क्या बात कही है !"

प्राणदादेवी मुस्कराने लगीं।

हेमेन्द्र बाबू बिना रुके बोलते रहे, "खैर, यह एक अलग विषय है। अब मैं पुनः अपने मुख्य विषय पर आ जाता हूं। हां, तो मैंने उस अध्यापिकाजी को उत्तर दिया, 'रात का वक्त ठहरा, आपको असुविधा भी हो सकती है। अन्यथा किसी दिन क्यों, आपके साथ तो मैं इसी समय चलने को तत्पर हूं।' मेरी इस बात पर वह हंस पड़ी और आपको शायद नहीं मालूम, जापानी नारी के हास में एक तेवर होता है। ऐसा तेवर जो उसकी भाव-भगिमा में एक अप्रतिम सौंदर्य की सृष्टि कर देता है।"

कक्ष में एक ओर बैठे एक व्यक्ति ने, जो सेवक की श्रेणी का जान पड़ता था, द्वार की ओर संकेत करते हुए पूछा, "हवा बहुत तेज़ हो गई है। दरवाज़ा बंद ही न कर दूं !"

अधिकारीजी ने कुछ उमंग में आकर उत्तर दिया, "आने दो। बाहरी हवा भी लगने दो। मेरा खयाल है, वह अपेक्षाकृत ताज़ी होती है।"

हेमेन्द्र बाबू हंस पड़े। बोले, "इसमें कोई संदेह नहीं कि बाहरी हवा ने मुझे सदा अनुप्राणित किया है और अब तो वह मेरी प्राण-वायु बन गई है। हां, तो उस समय वह बोली, 'आज तो नहीं, पर कल अवश्य, मैं स्वयं आपको लेने आऊंगी।' उसकी इस बात पर मैंने कह दिया, 'तो पहले आप मेरे निवास-स्थान पर पधारेंगी। चलो यह भी खूब रहा !' तब मैंने उसे अपने होटल का पता लिखा दिया।...परिणाम जो हुआ, वह मैं पहले ही बता चुका हूं। तो अन्त में मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि जब तक किसी एक में कोई असाधारण प्रतिभा, शक्ति, व्यक्तित्व अथवा गुण नहीं होता, तब तक किसी दम्पति का जीवन-साफल्य वास्तव में परिपूर्ण होता नहीं।"

अब कमलेश को बोलना पड़ा, "मैं समझता हूं, हम लोग उपस्थित विषय से थोड़ा अलग जा रहे हैं। मुख्य प्रश्न तो यह है कि जब अस्तित्व

की स्थापना और उसकी नई-नई सर्जना में हम आकण्ठ डूब रहे हों, तब हमारा धर्म क्या हो जाता है ? आस्थाओं के नष्ट हो जाने पर हमारा जो रूप बनेगा, उसमें और पशु में अन्तर क्या रह जाएगा ? आज की स्थिति तो यह है कि किसी व्यक्ति का विश्वास ही नहीं रह गया। अपवाद की बात दूसरी है। कोई पुरुष किसी नारी के समक्ष दिनानुदिन क्यों विवश और पराभूत होता जा रहा है, जब वह स्वयं नहीं सोचता, तो नारी ही क्यों यह सोचे कि उपलब्धियों का पारस्परिक आदान-प्रदान हमें कहां ले जाकर पटक देगा ? ऐसा जान पड़ता है, एक छोर से दूसरे छोर तक हम सब एक नशे में हैं। किसी भी कदम पर हम नहीं सोचना चाहते कि आगे खाई है कि खन्दक। जिस परम पिता परमात्मा की सृष्टि में हम रात-दिन जीवन के नाना सौख्य भोगते हैं, उसीकी आंखों के आगे, उसीके आदेश के विरुद्ध नित्य पाप करते हैं ! न्यायालय में भगवान को समुपस्थित और निरीक्षक[1] मानकर भी हम झूठी बात कहते नहीं झिझकते ! वकील और वादी-प्रतिवादी उसमें सहायता ही नहीं पहुंचाते, प्रोत्साहन देते हैं—यहां तक कि बहुधा, बहुतेरे अभियोगों की, मिथ्या सृष्टि भी करते हैं। भ्रष्टाचार की निन्दा करनेवाले नेता और अधिकारी स्वयं भ्रष्टाचार में लिप्त रहते हैं ! सम्पर्क, सान्निध्य, संस्तुति के सहारे हम सब नित्य मुलम्मा को सोना कह-कहकर मिथ्या को विजयी बनाते रहते हैं। वाद-विवाद के इस दौर में हम सत्य की कितनी हत्या करते रहते हैं, आपने कभी सोचा है ? इसपर तुर्रा यह कि अपने इस कार्य-कलाप का नाम रखते हैं नव-निर्माण ! बतलाइए, आंखों में धूल झोंकनेवालों की इस जमात के लिए आपने क्या सोचा है ? अगर अब तक नहीं सोचा, तो क्या आज भी नहीं सोचना चाहते ?"

कमलेश अभी इतना ही कह पाया था कि सभा में एक हलचल मच गई। अधिकारीजी बोले, "मेरे खयाल से विषय की स्थापना भली भांति

---

१. हाज़िर-नाजिर

हो चुकी। अच्छा हो कि अब आप लोग अपने-अपने प्रस्ताव तैयार करके कल इसी समय वैधानिक रूप से यहां उपस्थित करें।"

इतने में उपस्थित स्त्रियों में से एक ऐसी नारी उठकर खड़ी हो गई, जो बुरका धारण किए हुए बैठी थी। खड़े होने के साथ ही, उसने अपने मुख पर से बुरके का अनावरण करते हुए कह दिया, "पूर्व इसके कि आप लोग अपने-अपने प्रस्ताव लिखने का कष्ट करें, कृपया मेरा भी निवेदन सुन लें।"

कमलेश बोल उठा, "अवश्य-अवश्य। लेकिन आपका परिचय ?"

पन्नगारिसिंहजी की आंखें चौंधिया गईं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या कहकर उस नारी से कहें कि 'बैठ जाओ। अब तुम्हारे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह गई।'

तब तक वह नारी बोल उठी, "मेरा नाम आशालता है। मेरे पति का शुभ नाम है पन्नगारिसिंह। मैं उनकी विवाहिता पत्नी हूं। अभी उन्होंने सिनेमा हॉल के जिस दृश्य की बात उठाई थी, उसकी मूलाधार मैं हूं। मेरा निवेदन है कि केवल संशय, भ्रम और सन्देह के कारण उन्होंने अपने-आपको कितना दयनीय बना डाला है ! सिनेमा हॉल में उसी समय वे मेरे सामने क्यों नहीं आए ? अगर उनमें थोड़ा भी साहस होता, वे उसी क्षण मेरे सामने आ जाते, तो तत्काल उनका भ्रम-निवारण हो जाता। जिनका नाम उन्होंने सभ्यताप्रसाद घोषित किया है वे मेरे सहपाठी ही नहीं, सगे बहनोई भी हैं। मैं अपनी बहिन और बहनोई के साथ ही सिनेमा देखने गई थी। इनको मालूम भी है कि हम दोनों जुड़वां बहिनें हैं। अब मेरा निवेदन है कि प्रस्ताव बनाते क्षण आप इस समस्या पर भी विचार कर लें कि मनुष्य के इस अहंकार को कैसे नियंत्रित किया जाए, जो स्वामी या सत्ताधारी होने के कारण अपनी पत्नी या अधीनस्थ आदमी को जानवर समझने लगता है !"

प्राणदाजी बोल उठीं, "हियर-हियर ! अब बतलाइए श्रीमान पन्नगारिसिंहजी आपके प्रस्ताव का प्रारूप क्या होगा ?"

क्षण-भर को स्तब्ध, मौन रहकर सभी उपस्थित जन ठगे-से रह गए। अनेक व्यक्ति आशालता और पन्नगारिसिंह के जोड़े को एक कुतूहल से देखते रहे। फिर परस्पर धीरे-धीरे एकसाथ अनेक स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगे।

अन्त में जब कमलेश निर्मल के साथ चलने लगा, तो कुछ ऐसा लगता था, मानो उसे किसीको कोई उलहना नहीं देना है। किसीकी बुराई या त्रुटि के प्रति वह थोड़ा भी क्षुब्ध नहीं है—शान्त सागर की झिलमिल चन्द्र-किरणों से लहराता-सा उसका मन है और सुनील अम्बर-सा स्वच्छ उसका चेतना-पट। अनेक लोगों से मिल-जुलकर, दो-दो, एक-एक मिनट सबका मानस-बोधन करता हुआ वह निर्मल के साथ चल रहा था।

लेकिन उसके पुलकित मानस को ऐसा कुछ अनोखा और प्यारा लगता था कि आशालता की बातें वह अब तक नहीं भूल पाया था। विचार-गोष्ठी जब विषय-निर्धारण कार्य समाप्त कर चुकी और चाय पान की बारी आई, तब श्वेत गुलाब के फूल-सी खिली वह रूपसी नारी, खाली सीट पाकर उसके निकट आ पहुंची थी। सहसा फिर कमलेश के मन में भगवान का यह गीता-वचन उभर आया—सुन्दरता मेरा ही स्वरूप है। तभी उसके नमस्कार के उत्तर में प्रतिनमस्कार करता हुआ प्रसन्न वदन वह बोल उठा, "आप बड़ी महिमामयी निकलीं, जो आपने भरी सभा में एक नाटकीय दृश्य उपस्थित कर हम सभीको चकित-विस्मित कर दिया। अच्छा, सच-सच बतलाइए, आपको हमारी इस जीवन-कल्याण-विचार-सभा की योजना का पता कैसे चला?"

उस समय लीला प्रबोधबाबू के साथ बैठी कमलेश की ओर देख रही थी और रानी आनन्द को निर्मल की गोद में दे रही थी। सभी लोगों के समक्ष चाय, मीठे और नमकीन—नाना पदार्थ रखे जा रहे थे।

इतने में सामने चाय की केतली लेकर एक ब्वाय आ पहुंचा। कमलेश ने उसे सामने देखकर कह दिया, "पहले आपके लिए।"

इसी समय अवसर के अनुकूल दूसरा ब्वाय पूरा ट्रे लेकर वहां आ पहुंचा, जिसमें चाय के साथ बिस्कुट, दालसेव, केक, पेस्ट्री आदि सामग्री रखी हुई थी। सारी सामग्री आशालता के सामने रखता हुआ वह चाय डालने जा रहा था।

इसी क्षण प्राणदा अपनी सीट से उठकर कमलेश के पास आकर बोली, "मुझे आपसे बड़ी ईर्ष्या हो रही है। अरे साहब, मैं भी आपका थोड़ा समय चाहती हूं।"

कमलेश उसके सम्मान में उठकर खड़ा हो गया और हंसकर बोल उठा, "बहिन के लिए ईर्ष्या की बात तो नहीं होनी चाहिए। जबकि सेवा के लिए मैं सदा प्रस्तुत हूं। दो मिनट इस बहिन से बात कर लूं, उसके बाद······।"

"उसके बाद आधा घंटा मेरे लिए।"

"आधा घंटा क्यों, जब तक नींद न आए तब तक।"

प्राणदाजी खिलखिलाकर ऐसे हंस पड़ीं कि उनके कपोलों में अमृत-कूप बन गए। तब वे बोलीं, "आप भी खूब हैं।"

इतने में नमकीन काजू टूंगती हुई आशालता बोली, "मुझे एक बन्धु से इसकी सूचना मिल गई थी। इसके सिवा एक स्थानीय पत्र में भी आज इस सभा की सूचना दी हुई थी। मैंने सोचा—सम्भव है, इस अवसर से लाभ उठाने के लिए मेरे स्वामी भी यहां पहुंच जाएं। यूं भी मैं तीन दिन से यहीं हूं। इसीलिए मैं पहले से तैयार होकर आई थी। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मेरा निशाना अचूक बैठा।"

अब तक वह बुरके को तहाए हुए अपने आगे रखे हुए थी। अब उसने उसे अपनी कुरसी से नीचे रख लिया।

इतने में लीला पास आकर बोली, "इस समय हमारे घर ही चलना होगा तुमको।"

कमलेश पलक गिराता-उठाता हुआ बोला, "ना, भाभी। आज के लिए क्षमा। देख ही रही हो, दम लेने का अवकाश नहीं मिल रहा है।"

आनन्द निर्मल की गोद से उठ-उठकर हरएक वस्तु पर झपट्टा मारने लगता था! तब उसने उसे पुनः रानी की ओर बढ़ा दिया। एकाएक कमलेश की दृष्टि उस ओर जा पड़ी। पर उसी क्षण कमलेश आशालता की ओर उन्मुख होकर बोला, "आपने बड़े साहस से काम लिया। पर फिर प्रश्न उठता है कि यही स्पष्टीकरण आपने यथाअवसर अपने स्वामी को क्यों नहीं दिया?"

ब्वाय कमलेश के कप में चाय ढालकर चला गया था। अब वह यत्र-तत्र अन्य लोगों के आगे रखे हुए प्यालों में, आवश्यकतानुसार चाय ढाल रहा था।

आशालता कानों की झुमकियां हिलाती और चाय की चुस्की लेती हुई बोली, "कैसे देती? आप तो जानते हैं, जब किसीके मन में संदेह का कीड़ा रेंगना शुरू कर देता है तब स्पष्टीकरण की आवाज़ उसके कानों तक पहुंच नहीं पाती।"

उसके इस उत्तर पर कमलेश सिर हिलाता हुआ बोला, "हां, यह आप ठीक कहती हैं।"

आशालता कहती जा रही थीं, "मैंने जब उनको उत्तर दिया, 'मेरी बात तो सुनिए' तो इसपर उन्होंने आवेश में आकर कह दिया, 'मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। निकल जाओ मेरे घर से और फिर कभी सूरत मत दिखाना।' इसके बाद तो उन्होंने मुझे ऐसी गालियां दीं, जिनको शब्दशः मैं आपके सामने कह भी नहीं सकती! मैं बिना कुछ कहे, बिना कुछ लिए, इसी भांति खाली हाथ चली आई थी!"

अब उसका स्वर भर्राने लगा था।

कमलेश ने देखा, उसके पति सिंहजी अधिकारीजी से बात कर रहे हैं। अतः उसने पास बैठे हुए निर्मल से कह दिया, "इस जोड़ी को तुम अपने साथ घर ले चलो, तो कैसा हो?"

निर्मल बोला, "यही मैं भी सोचता हूं। मेरा खयाल है, बादल हट गए हैं, आसमान साफ हो गया है।"

इतने में प्राणदादेवी ने कमलेश के निकट आकर कह दिया, "देखती हूं, आप बहुत घिरे हुए हैं। आज आपके लिए समय देना कठिन है। समय भी आठ का हो गया। अब तो कल ही मिलना होगा।" फिर नमस्कार करती हुई बोली, "अच्छा···!"

कमलेश बहुत विनत हो उठा, बोला, "हां, सचमुच वचन देने के बाद भी समय नहीं निकाल पाया। आशा है, आप इसका कुछ खयाल न करेंगी।"

तब तक निर्मल ने प्राणदादेवी से कह दिया, "बड़ी कृपा हो, यदि कल आप प्रातःकाल आठ बजे मेरे घर आ जाएं। चाय और भोजन वहीं प्राप्त करें। इस प्रकार आपको इनसे वार्तालाप करने का पूरा अवसर मिल जाएगा।"

"लेकिन मैं सोचती थी, आप मेरे यहां पधारते।" एक उत्साह से प्राणदाजी कहने लगीं, "परराष्ट्र मन्त्रालय के उपसचिव श्री निरभ्रचन्द्र गांगुली को तो आप जानते होंगे। वे मेरे भाई हैं। चाणक्यपुरी में ही···।"

तब तक कमलेश ने मैच बाक्स पर सिगरेट ठोंकते हुए कह दिया, "जानता भी होता तो मिलना कठिन होता। कुछ ऐसी बात है कि किसी सरकारी अधिकारी से मिलने पर उससे बात करते-करते मुझे जो कभी अपने किसी पाप की याद आ जाती है, तो मैं अपने-आपको क्षमा नहीं कर पाता।"

उत्तर सुनकर प्राणदाजी स्तब्ध हो उठीं। उन्होंने कमलेश के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना नहीं की थी।

फिर कुछ ऐसा जान पड़ा कि कमलेश अपने में खो जाएगा। पर तभी पलक झपकते-झपकते खुल गई। मन ही मन वह कह रहा था, 'परम पिता, तुम सब देख रहे हो।'

थोड़ी देर में जब चाय पान समाप्त हो गया तब आगे-आगे निर्मल और कमलेश सीढ़ियां उतरने लगे। उनके बगल में रानी आनन्द को गोद में लिए निर्मल के साथ चल रही थी। पीछे-पीछे आशालता और पन्नगारिसिंह थे। सभी मौन और गम्भीर थे।

जब सब लोग होटल के नीचे आ गए, तो अधिकारीजी ने पास आकर कमलेश से पूछा, "कल के अधिवेशन का सभापतित्व करने के लिए हेमेन्द्र बाबू से कह ही न दिया जाए, ताकि वे पूरी तरह तैयार होकर आएं।"

कमलेश और निर्मल ने एकसाथ कह दिया, "ठीक है, अवश्य कह दीजिए।" साथ में कमलेश ने इतना और जोड़ दिया, "बल्कि कल सवेरे चाय पान और भोजन के लिए भी उन्हें आमन्त्रित कीजिए।"

तभी निर्मल बोल उठा, "मेरे यहां के लिए। चलो मैं उनसे स्वयं कहे देता हूं।"

हेमेन्द्र बाबू से छुट्टी पाकर सभी व्यक्ति टैक्सी में जा बैठे।

चलते समय निर्मल ने प्राणदादेवी को अपना विज़िटिंग-कार्ड देते हुए कह दिया, "तो फिर तय रहा। कल प्रातःकाल आठ बजे आप मेरे यहां आ रही हैं।"

प्राणदा बोलीं, "आठ नहीं, साढ़े आठ बजे।"

जब गाड़ी कनाटप्लेस से मोड़ लेने लगी, तो कमलेश बोला, "मुझे उस दुकान पर थोड़ी देर के लिए उतरना पड़ेगा।" निर्मल सोच रहा था, 'सवेरे शायद इसीलिए ये महाशय चुपचाप चले आए थे।'

क्षण-भर बाद टैक्सी उसी दुकान के आगे खड़ी हो गई और कमलेश के साथ अन्य लोग भी उतर पड़े। पर ज्योंही वे सब बरामदे में पहुंचे, त्योंही लीला के साथ प्रबोधबाबू सामने दिखाई दिए।

कमलेश लीला को ध्यान से देखकर कुछ विचार में पड़ गया। तभी प्रबोधबाबू ने कह दिया, "मैं एक बात आपसे कहता-कहता रह गया था कमलेशजी।"

कमलेश ने धोती को पैर से दबता देख, उसके छोर को हाथ में लेकर पूछा, "कौन-सी बात ?"

प्रबोधबाबू ने कह दिया, "मैं इस सम्पूर्ण विचारक-समाज को कल अपने यहां एक प्रीतिभोज देना चाहता हूं।"

"तो फिर कल शाम के लिए प्रबन्ध कर लीजिए।" निर्मल मुस्कराता हुआ बोल उठा।

फिर जब सब लोग दुकान के भीतर जाने लगे, तब प्रबोध और लीला ने हाथ जोड़कर सबको नमस्कार करके विदा ली।

अब आनन्द कमलेश की गोद में था।

कमलेश जब रबर, प्लास्टिक और लकड़ी के छोटे-बड़े अनेक खिलौने खरीद रहा था तभी निर्मल बोल उठा, "मेरी समझ में नहीं आता कि इतने अधिक खिलौने खरीदने की क्या जरूरत है ?"

कमलेश ने उत्तर दिया, "और आपको इस मामले में दखल देने की क्या जरूरत है ? मैं अपने आनन्द के लिए ले रहा हूं।"

आनन्द रबर के तोते की चोंच को अब तक मुंह में डाल चुका था। चोंच कुछ नुकीली थी, आनन्द के मसूढ़े में ऐसी छिद गई कि रक्त निकल आया।

रानी मुस्कराती हुई बोली, "लाइए, मुझे दे दीजिए।"

कमलेश जो आनन्द को रानी के अंक में सौंपने लगा, तो उसकी एक अंगुली रानी की कंचुकी से ज़रा-सी छू गई। उसे जान पड़ा, मानो बिजली का तार छू गया हो। स्वाभाविक था कि उसकी आंखें मुंद जाएं।

निर्मल ने पहले ही वह तोता आनन्द के हाथ से छीन लिया था। इसलिए वह रोने लगा।

उस समय कमलेश खिलौनों के दाम चुकाने में व्यस्त था।

इसके बाद आशालता खिलौनों के डब्बे को उठाकर जब चलने लगी, तो निर्मल ने कह दिया, "लाइए मुझे दे दीजिए, आप क्यों कष्ट कर रही हैं।"

डब्बा उन्हें सौंपकर सबके साथ चलती हुई आशालता बोली, "आपने देखा भाई साहब ! दुकान से उस टैक्सी तक खिलौनों के इस डब्बे को ले चलने का मेरा एक क्षणिक सुख भी निर्मलजी को स्वीकार नहीं हुआ।"

कमलेश उसके 'क्षणिक सुख' शब्दों पर अटक गया। उसे अपनी अंगुली के करेण्ट स्पर्श का ध्यान हो आया। वह सोचने लगा, 'लवंग तो अब जीवन में मिलने से रही। करेण्ट तो लगेगा ही।'

सभी लोग टैक्सी की ओर बढ़ रहे थे।

निर्मल बोला, "आप मुझे समझीं नहीं आशाजी।" और इस कथन के बाद उसने आनन्द को रानी की गोद से लेकर आशालता को देते हुए कहा, "वे खिलौने तो नकली थे। आप इस असली खिलौने से चाहे जितना खेलिए। आपत्ति के बदले मुझे प्रसन्नता ही होगी।"

आशालता आनन्द को गोद में लेकर उसका मुंह चूम रही थी।

अब सब लोग टैक्सी में बैठ चुके थे।

कमलेश बोला, "कहिए सिंहजी, आप कुछ बोल क्यों नहीं रहे ?"

सिंहजी ने उत्तर दिया, "मैं आप सभी लोगों के सम्मुख बड़ा लज्जित हूं।"

रानी ने हंसते-हंसते रूमाल मुंह से लगा लिया और निर्मल ने कह दिया, "मेरी समझ में नहीं आता कि आशा बहिन को आपने समझने की चेष्टा क्यों नहीं की ? क्या आप अपने साढ़ू भाई से परिचित नहीं थे ?"

"इस मौके पर मैं इतना और स्पष्ट कर दूं," आशालता बोली, "कि मेरी बहिन का विवाह अभी हाल ही में हुआ है, हमारे इस विच्छेद के बाद।"

कमलेश बोल उठा, "तब तो अपने बहनोई के साथ आपका बैठना-उठना सिंहजी के लिए सचमुच चिन्ता का कारण रहा होगा ! ऐसे अवसरों पर एक ही वस्तु हमारी शंकाओं को सन्तुलित रखने में सहायक रह सकती है और वह है आस्था।"

इसके बाद उसके मन में आया, 'इसके सिवा और भी एक बात है।

आशालता असाधारण रूप से सुन्दरी न होतीं, तो भी सिंहजी को ऐसा सन्देह न होता।' लेकिन इस सम्बन्ध में कमलेश ने कुछ न कहकर इतना और कह दिया :

"तात्पर्य यह कि पति नाम का जीव आज भी पत्नी पर वैसा ही एकाधिकार रखना चाहता है, जैसा वह बीस या तीस वर्ष पूर्व रखता था, जब हमारे घरों की देवियां, आज की भांति, न तो नौकरी के लिए दौड़ लगाती थीं, न नित्य उपयोग में आनेवाली वस्तुओं की खरीदारी के सिलसिले में उन्हें बाज़ार की हवा खाने की आवश्यकता पड़ती थी।"

सिंहजी अब तक चुप थे। पर कमलेश के उपर्युक्त कथन के बाद वे बिना बोले न रह सके, "आपकी यह बात मैं मानता हूं। लेकिन फिर प्रश्न उठता है कि यही बातें क्या मुझको नहीं बतलाई जा सकती थीं ?"

"हां, नहीं बतलाई जा सकती थीं।" आशालता बोली, "क्योंकि कालेज से लौटते ही श्रीमान का प्रश्न होता था, 'कोई पत्र नहीं आया कहीं से ?' अगर मैंने कह दिया, 'नहीं आया', तो आपकी शब्दावली होती थी, 'मुझसे झूठ बोलती है चुड़ैल ! जबकि पोस्टमैन कहता था, एक लिफाफा था, जिसे मैं घर दे आया हूं।' अब मैं आपसे पूछती हूं, इनका प्रश्न तो अपने ही पत्र के सम्बन्ध में था। मान लीजिए, मेरा कोई पत्र आया भी हो, तो इनसे मतलब ? बतलाइए क्या आप नारी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानते ?"

"मेरी बात जाने दो आशाजी, अस्तित्व की स्वतन्त्रता मैं इस रूप में मानता हूं कि पत्नी की रुचियां, मान्यताएं और प्रकृति भिन्न हो सकती हैं, लेकिन इसके साथ ही यह भी मानता हूं कि पति के साथ आस्था तो उसे रखनी ही पड़ेगी। आपका कोई निजी पत्र आया है, यह बात आपको भी सिंहजी से छिपानी नहीं चाहिए थी। इसी प्रकार सिंहजी को भी अपनी डाक के सम्बन्ध में, पोस्टमैन की बात का दूसरा अर्थ नहीं लेना चाहिए था, क्योंकि भ्रमवश उसका उत्तर गलत भी हो सकता है जैसाकि आपके कथन से विदित हुआ है। आप सुन रहे न सिंहजी !"

"मैं सब सुन रहा हूं महानुभाव" सिंहजी ने उत्तर दिया।

इसी समय कमलेश बोल उठा, "तो इतना और सुन लीजिए कि एक सभ्य नागरिक होते हुए जो आदमी अपनी प्रियतमा को चुड़ैल कहकर सम्बोधित करता है, मैं उसको एक जंगली जानवर, सांप और एक पागल कुत्ते की संज्ञा देता हूं।"

कमलेश का इतना कहना था कि आशालता ने कमलेश के पैर पकड़ लिए। एक आतुरता के साथ उसके मुंह से निकल गया, "बस, बस कीजिए भाई साहब ; बहुत हो चुका।"

"अभी बहुत कहां हुआ है ?" प्रखर वाणी में कमलेश बोला, "थोड़ा-सा बाकी है, जो आपके लिए है। मैं नहीं मानता कि भारतीय नारी का कोई ऐसा भी पत्र हो सकता है, जिसको पति से प्रकट करने में उसे संकोच करने की आवश्यकता हो ! मेरी मान्यता है कि एक बार सर्वस्व समर्पण कर देने के बाद उसका सारा निजत्व और अहंकार, स्वाभिमान और गौरव स्वामी के अस्तित्व में सदा के लिए विलय हो जाता है। अभी आपने अपने जिस स्वतन्त्र अस्तित्व की बात उठाई थी, वह भी आपका एक प्रमाद है। इसी प्रकार के भ्रम पाल-पालकर आप जैसी स्वतन्त्र और स्वच्छन्द नारियां अपने सौभाग्य की हत्या कर बैठती हैं। अगर आप दोनों को अपने इस विच्छेद पर लाज न आए तो यह बड़े दुःख की बात होगी।"

कमलेश का इतना कहना था कि सिंहजी बोल उठे, "बस, बस, दद्दा, अब मैं अपने प्रस्ताव का प्रारूप तैयार कर लूंगा। इसलिए मुझे यहीं उतर जाने दीजिए।"

निर्मल बोल उठा, "टैक्सी रोक दो भाई। आपको उतर ही जाने दो।"

टैक्सी रुक गई। सिंहजी उतर गए और हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए बोले, "मैं आप लोगों से पुनः क्षमा मांगता हूं।"

कमलेश ने कह दिया, "भगवान आपका कल्याण करे। पर क्षमा

तो ग्रापको ग्रपने-ग्रापसे मांगनी चाहिए सिंहजी ।"

टैक्सी ग्रब ग्रागे बढ़ने ही वाली थी कि ग्राशालता बोली, "ग्रब मैं भी ग्राज्ञा चाहती हूं।"

उसका स्वर भर्राया हुग्रा था ग्रौर वह रूमाल से ग्रांसू पोंछ रही थी।

टैक्सी से उतरते हुए ग्राशालता ने रुद्ध कण्ठ से इतना ग्रौर कह दिया, "मेरे लिए ग्रौर गति कहां है ?"

कमलेश बोल उठा, "मैं ग्रापसे ऐसी ही ग्राशा रखता था ग्राशाजी।"

तभी रानी बोली, "वैसे ग्राज की रात ग्रगर ग्राप हमारे यहां ही रह जातीं तो कितना ग्रच्छा होता !"

किन्तु तभी निर्मल ने कह दिया, "नहीं, नहीं, इस समय रोकना ठीक नहीं। जाइए ग्राशाजी। मगर कलवाली बैठक में ग्रवश्य ग्राइएगा।"

ग्राशालता ग्रांसू पोंछती हुई भारी-भारी-सा मन लिए उसी ग्रोर चल दी, जिधर सिंहजी सिर नीचा किए चले जा रहे थे।

तभी कमलेश ने निर्मल की ग्रोर उन्मुख होकर धीरे से कह दिया, "विच्छेद के बाद मिलन की ग्रास्था के इस रूप को भी देख लो निर्मल। देखो, देखो, सिंहजी खड़े हो गए।"

निर्मल ग्रौर रानी दोनों हंस पड़े। फिर कमलेश को भी हंसी ग्रा गई।

६

खिलौने पाकर आनन्द बड़ा प्रसन्न था। रानी जब कभी उसे लेकर उसके सामने आ जाती, तो वह झट से कमलेश की ओर अपने हाथ फैला देता और रानी संकोच में पड़ जाती।

कमलेश ने लक्ष्य किया, वह आनन्द को सीधे उसीके हाथों में न देकर अपने स्वामी निर्मल के हाथों में दे देती है। इस बात से उसे प्रसन्नता भी हुई, साथ ही पश्चात्ताप भी कम नहीं हुआ।—आनन्द को रानी की गोद में देने की आवश्यकता ही क्या थी!

यह चिन्तन कमलेश का कभी स्थिर होता न था। जब कभी वह चुप रहता, तो भांति-भांति के विचार उसके मानस पर मंडराने लगते। उन विचारों के साथ काल्पनिक चित्रों का सम्बन्ध ऐसा कुछ जुड़ जाता कि उसे अपने-आपमें खोते देर न लगती। आनन्द को प्यार करने के क्रम में वह सोचने लगा, 'अब तक तो मेरी लवंग भी मां बन गई होती।' फिर उसी क्षण लवंग का यह कथन जैसे उसके कानों पड़ में गया, 'जैसी तुम्हारी मरज़ी।...लेकिन।'

'लेकिन क्या?'

'लेकिन यह कि जीजी कहती थी—चटनी को दाल-भात की तरह नहीं खाया करते।—फिर एक खिलखिलाहट...।

फिर उसे ध्यान हो आया, 'चलते समय मल्लिका ने कहा—कभी हमारे घर भी आइए।'

कमलेश विचार में पड़ गया था।

तब मल्लिका ने इतना और जोड़ दिया था, 'अकेले आने में संकोच

हो तो भाभी को भी साथ लेते आइएगा। वैसे अकेले आने में संकोच होना तो न चाहिए।'

कमलेश तब भी न बोला, तो मल्लिका ने मुस्कराते हुए कह दिया था, 'मगर हां, मैं यह भूल ही गई कि भला आप क्यों आने लगे! क्योंकि अपनी कविता में पहले ही आपने कह डाला है—बुरा मत मानना, मिलने का वचन नहीं देता हूं—खैर, कोई बात नहीं। वैसे मैं आपकी कुछ कविताएं सुनना चाहती थी।'

इतने में भाभी आ पहुंची थीं। वैसे अब तक उसने तै कर लिया था कि वह दूसरे दिन अकेला ही उसके यहां जाएगा। उसे कविता भी सुनाएगा—उसका संगीत भी सुनेगा।

बस-स्टैण्ड पास ही था। भाभी जब मल्लिका को वहां तक भेजने जाने लगीं, तब उसको भी उनका साथ देना पड़ा था। लौटकर चुपचाप जब दोनों घर आ गए, तो भाभी ने पूछा था, 'कल उसके घर चलोगे!'

कमलेश की कुछ ऐसी स्थिति हो गई थी कि वह ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपना अभिमत जल्दी स्थिर नहीं कर पाता था। अतएव उसने इस बात को भाभी पर ही छोड़ते हुए कहा था, 'जैसा कहो।'

तब भाभी ने हंसते-हंसते कहा था, 'तुम अपने को छिपाते बहुत हो लला!'

'थोड़ा-बहुत छिपाते तो सभी हैं भाभी। क्योंकि सभी बातें, रूप और प्रतिरूप, प्रतिच्छंद और सम्मोहन विधियां न पहले स्थिर हो पाती हैं, न स्पष्ट। फिर मन में एक भय यह भी समाया रहता है कि हमसे कहीं कोई गलती तो नहीं हो रही! तुम विश्वास न करोगी भाभी, असली बात यह है कि मैं लवंग को सदा अपने इर्द-गिर्द देखता हूं।'

भाभी की दृष्टि सहसा कमलेश की आंखों पर टिक गई, जिनकी पुतलियों पर अब पानी चढ़ आया था। तब वे ग्रीवा घुमाती हुई बोलीं, 'सब मन का खेल है लला। पढ़े-लिखे होकर ऐसा भ्रम पाल रहे हो, यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है। मुझे विश्वास है, एक दिन ऐसा

आएगा, जब तुम उसे भूल जाओगे। बात यह है कि जीवन के सारे नाते केवल शरीर तक सीमित हैं। शरीर से परे कहीं कुछ नहीं है।'

'तो तुम कहना चाहती हो कि अब लवंग के साथ मेरे जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया ?'

'इसमें क्या कोई शक है ? ये सारी भावनाएं तुम्हारे मन की हैं। बात यह है कि संयोग से तुम लवंग को पूर्ण रूप से भोग नहीं पाए। तुम्हारी सारी वासनाएं अपूर्ण, अतृप्त और अशांत बनी रहीं। अपनी कल्पनाओं को न तो तुम चरितार्थ कर पाए, न उनकी सम्पूर्ति और प्रतिपत्ति में डूबकर, नहाकर, बाहर निकलकर अपने को देख सके—परख सके। उसीकी प्रतिक्रिया अब तक तुम्हारे मन पर छाई है। अभी जो कविता तुमने मल्लिका को सुनाई थी, उसमें भी तुम्हारी वही कुण्ठा, वही ग्रन्थि विद्यमान थी। मेरा वश चले तो मैं आंख मूंदकर मल्लिका को तुम्हारे पीछे लगा दूं। छाया की भांति वह सदा तुम्हारे साथ डोलती रहे। मुझे विश्वास है, दस दिन में तुम साधारण स्तर पर आ जाओगे। लेकिन सारी कठिनाई तो यह है कि मैं किसीको जोखिम में नहीं डालना चाहती। न तुमको—न उसको। हमारे साथ तो केवल एक कर्तव्य का नाता है लला। मगर अब मुझे स्टोव जलाकर पानी चढ़ा देना चाहिए। तुम्हारे दद्दा के आने का समय हो गया।'

कमलेश एक-एक बात को, शब्द को, ध्वनि और मर्म को ध्यान से ग्रहण कर रहा था। भाभी की बात जब पूरी हो गई, तो उसे उनके जो शब्द याद रह गए वे केवल इतने थे, 'संयोग से तुम लवंग को पूरी तरह भोग नहीं पाए। तुम्हारी वासनाएं अपूर्ण, अतृप्त और अशांत बनी रहीं। उनमें नहाकर, डूबकर, उस धारा से बाहर निकलकर तुम एक बार अपने को देख नहीं पाए।…'

सिर लचाकर तब वह सोचने लगा, 'हो सकता है। पर मैं लवंग को भूल जाऊंगा, इस बात पर मैं कैसे विश्वास कर लूं ? आस्था की वाणी भी क्या कभी मर सकती है ? ना, ना, मैं नहीं मानूंगा।' इसी समय रज्जन दद्दा

आ गए थे और बात आई-गई हो गई थी।

फिर रात में उन्होंने बात उठाई थी। 'लड़की सब तरह से तुम्हारे योग्य है। पहले अपना मन पक्का कर लो, तब बात आगे बढ़ाई जाए।'

संकोचवश उसने दद्दा से इतना ही कह दिया था, 'आपके किसी आदेश से बाहर तो मैं जा नहीं सकता। हां, इतना ही सोचना पड़ता है कि ऐसी जल्दी क्या है ?'

लेकिन दूसरे दिन भाभी और वह दोनों रिक्शे में बैठकर साथ ही साथ गए थे। रास्ते में कमलेश ने अपनी एक दुविधा भी भाभी को बतला दी थी। उसने कहा था, 'भाभी, आज मैंने लवंग को स्वप्न में देखा था। कानों के पास मुंह ले जाकर वह मुझसे कह रही थी—देखो कवि, बहुत रोया मत करो। बस यही बात कहने के लिए मैं तुम्हारे पास चली आई हूं। और हां, यह लड़की, जिसका यह गीत सुनकर तुम बहुत रोए थे तुम उसके बारे में क्या सोचते हो ?—और भाभी, विश्वास मानो, मैं सच कहता हूं तुमसे, उस स्वप्नावस्था में भी मैं विचार में पड़ गया था। तब उसने कह दिया—मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानो यह किसीसे चोट खाई हुई है।—बस इसके बाद मेरी आंख खुल गई थी।'

कमलेश ने इसके आगे इतना और जोड़ दिया था, 'यह मैं अपने स्वप्न की बात कह रहा हूं तुमसे। विश्वास मानो, मेरे पास इसका और कोई आधार नहीं है।'

कमलेश की इस बात पर भाभी ने कहा था, 'पढ़ी-लिखी लड़कियों के सम्बन्ध में आजकल हमारे समाज में नाना प्रकार की चर्चाएं चलती रहती हैं। तुम जानते ही हो कि यह काम उन्हीं लोगों का होता है, जो रूढ़िवादी, अशिक्षित और कायर होते हैं। वे स्वयं जिन संघर्षों का सामना नहीं कर सकते, उनके साथ लड़नेवाले क्रांतिकारी व्यक्तियों का मजाक उड़ाते और उन्हें अपमानित करते हैं।'

'हां, यह तो तुम ठीक कहती हो भाभी।'

'फिर हमारी जो माताएं अपने जीवन-काल में घरों की चार-दीवारी

में बन्द रहकर पराधीनता का अत्यन्त हीन और दैन्य जीवन व्यतीत करती रही हैं, उनको यह बात भला कब सहन हो सकती है कि उनकी बहू-बेटियां अकेली बाहर निकलें, जिससे चाहें उससे मिलें और जीवन के नाना प्रसंगों में उनके साथ सहयोग करें, उनका हाथ बंटाएं।'

'मैं निरन्तर इसका अनुभव करता हूं।'

'इसके साथ और भी एक बात है', भाभी बोलीं, 'कालेजों में पढ़नेवाली लड़कियां गूंगी और बहरी तो होतीं नहीं। पराधीन भारत में जैसे घर-घर हुआ करती थीं; दरवाज़े पर कोई चाहे दस बार पुकारता और चिल्लाता रहे—शर्माजी, शर्माजी, पण्डितजी, पण्डितजी, मगर भीतर से यह जवाब कभी नहीं मिलता था कि वे घर में नहीं हैं। ऐसी दशा में उत्तर तक देना वे अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझती थीं।'

कमलेश बोला, 'भाभी, अब मैं आपसे क्या कहूं। स्वयं मेरे घर में भी ऐसी ही स्थिति है। तुमने तो सब देखा ही है, दिन में लवंग से दो मिनट भी बात करना मेरे लिए दुष्कर रहता था।'

भाभी बोलीं, 'तो मतलब यह कि अपने सहपाठियों के साथ उनका बोलचाल ही नहीं, साथ बैठना-उठना भी होता है। फिर यह कौन कह सकता है कि मनुष्य के भीतर का शैतान कब प्रबल हो उठेगा। जिसका मांस नोच-नोचकर खाएगा, उसीकी शिकायत करेगा! दुनिया में तरह-तरह के आदमी हैं; इसलिए अगर तरह-तरह की बातें उठती हैं, तो उन्हें कौन रोक सकता है?'

'ये सब बातें तो हुईं हमारी सामाजिक परिस्थिति और मनुष्य-स्वभाव की' भाभी कहती गईं, 'अब मूल बात यह है कि दो बार मल्लिका का विवाह तै होते-होते रुक चुका है। और यह तो तुम मानोगे कि हमारी सामाजिक दशा इतनी गिर गई है कि सयानी हो जाने पर लड़की का विवाह जब तक हो नहीं जाता, तब तक उसका मानस क्षुब्ध तो रहता ही है। मैं अगर युक्ति से काम न लेती, तो वह आज पहली ही भेंट में अपना संगीत कभी न सुनाती।'

भाभी की ये सारी बातें सुनकर कमलेश की दुविधा बहुत-कुछ शांत हो गई थी। फिर वह जब मल्लिका के घर पहुंचा, तो दरोगाजी के रहन-सहन का स्तर देखकर उसके मन को संतोष ही मिला था। चाची ने दोनों को बड़े प्रेम से बिठाया। चाय, मिठाई, नमकीन आदि से उसका पूरा-पूरा स्वागत तो किया ही था। भाभी को एकान्त में ले जाकर अपनी सामाजिक मर्यादा के सम्बन्ध में बड़ी देर तक बातें करती रही थीं ! मल्लिका के सीने-पिरोने और कसीदा काढ़ने की निपुणता का परिचय भी उन्होंने दिया था। चाय-पान के समय मल्लिका स्वयं भी थोड़ी देर उसके सामने बैठी रही थी। जब मिठाइयां खाई जा रही थीं, तब उन्होंने इतना और जोड़ दिया था कि अमुक-अमुक चीजें उसीकी बनाई हुई हैं।

कमलेश भाभी के घर में जिस तरह रहता था, उसका एक विशेष ढंग था। भोजन के बाद रात को वह तुरन्त लेट रहता। दस-बीस मिनट या कभी-कभी आध घंटे तक करवटें बदलता और फिर सो जाता। स्वप्नावस्था में लवंग यत्र-तत्र ठीक उसी प्रकार उसके पास डोलती रहती, जिस प्रकार घर में रहती और प्रतीत होती थी। कभी उसकी हंसी की खिलखिलाहट सुनाई देती, कभी खनकती हुई चूड़ियां। कभी किसी गीत की लहर : 'पायल को बांध के—धीरे-धीरे—दबे-दबे—पांव को बढ़ाना।' फिर लवंग का ठिठककर खड़ा हो जाना, घूंघट की कोर को दाएं हाथ की दोनों पतली कोमल उंगुलियों से थामे रहना और मन्द-मन्द मुस्कराना। फिर उसके बोल सुनाई देते, 'सो गए ? अरे हटो, बनते हो मुझसे !!··· हिश् ! इतनी जल्दी !!'···फिर पहाड़ की किसी चोटी पर खड़ी हो जाती है और उसका अंचल पवन-झकोरे के साथ फरफराने लगता है और परियों की भांति लवंग उड़ जाती है। फिर बत्तियां बुझ जाती हैं, घोर अंधकार छा जाता है। फिर एक मादक स्वर-लहरी सुनाई देने लगती है 'सुरतिया जाकी मतवारी, पतरी कमरिया, उमरिया बारी ! एक नया संसार बसा है···जिसके दो नयनन में। बालम आय बसो मोरे मन में।'

तभी थोड़ी देर स्थिर रहने के बाद वह बड़बड़ा उठता।

'क्या कहा ?—मैं लवंग को भूल जाऊंगा !···ना भाभी ना !' फिर स्वर क्रमशः तीव्र होता जाता, 'कहां हो लवंग ? लवंग ! लवंग !!'

एकाएक रज्जन दद्दा की नींद टूट जाती। वे बोलते, 'क्या है कमलेश ?'

फिर भाभी लाइट ऑन करतीं, उनके अपने कमरे का दरवाज़ा खुलता, फिर दोनों उसके कमरे का द्वार खुलवाते।

कमलेश दरवाज़ा खोलकर एक अपराधी की भांति जैसे हाथ बांधकर खड़ा हो जाता। भाभी पूछतीं, 'क्या बात हुई लला ?'

कमलेश की आंखें डबडबाई मिलतीं; वाणी मूक, जड़, होंठों में कम्पन। कोई उत्तर न बन पड़ता।

भाभी कह देतीं, 'पागल मत बनो लला, कहीं कोई नहीं है ! अब चुपचाप सो जाओ।'

इसके बाद भाभी और दद्दा दोनों सोने चले जाते। कमलेश भी बत्ती बुझाकर लेट रहता। जब नींद न आती तो फिर बत्ती जलाकर या तो कोई मैगज़ीन पढ़ने लगता, या कविता लिखना शुरू कर देता। दो-चार पंक्तियां लिखता—हरएक अक्षर, शब्द और पंक्ति के साथ लवंग जैसे पास आकर खड़ी हो जाती और उसके कन्धे पर हाथ रख देती। कमलेश की लेखनी आपसे-आप रुक जाती। तब वह फिर बत्ती बुझाकर लेट जाता। लेटे-लेटे जैसे कोई उसके कान में कहने लगता—कम से कम प्रतीत उसको ऐसा ही होता, 'क्या लिख रहे थे अभी ? देखते नहीं अभी सिर्फ दो-बजे हैं। बत्ती नहीं बुझाओगे, तो मुझको भी नींद न आएगी। फिर सवेरे कैसे उठोगे ? देर से उठोगे, तो अम्मा बोली न बोलेंगी मुझपर ! सुननेवाले हंसेंगे !···यह क्या करते हो ? नहीं, नहीं, सोओ, सोओ, मैं भी सो जाती हूं।'

इस प्रकार कमलेश कभी-कभी अनुभव करता, 'जब कभी मुझे नींद नहीं आती है, तब लवंग मुझको इसी प्रकार सुलाने आ पहुंचती है !'

फिर एक दिन वह रात को देर से लौटा था। पौने ग्यारह का समय

रहा होगा। आते ही कह दिया, 'खाना नहीं खाऊंगा, खाकर आया हूं।'

'कहां से ?' भाभी ने पूछा।

मुस्कान के ब्याज में कमलेश ने उत्तर दिया, 'मल्लिका के यहां से।'

उत्तर सुनकर भाभी बड़ी प्रसन्न हुई थीं। रज्जन दद्दा तो सो गए थे। लेकिन भाभी उसके पास आकर थोड़ी देर बैठी थीं। क्या-क्या बातें हुईं। यह जानने के लिए वे अतीव उत्सुक थीं।

कमलेश ने सब कुछ एक ही वाक्य में कह डाला, 'मैं अपनी बात पर स्थिर हूं, जैसा चाहो करो।'

अन्य बातों के सम्बन्ध में कुछ कहना उसने उचित नहीं समझा था। क्योंकि वह मल्लिका के साथ पिक्चर देख आया था। ऐसा नहीं था कि मानोभावों के आदान-प्रदान में उसने अपने-आपको कहीं सुलभ बनाने की चेष्टा की हो। लेकिन यह बात भी न थी कि अपनी ओर से उसने किसी निषेध या वर्जना पर ज़ोर डाला हो, सिवा इसके कि ऐसी क्या जल्दी है, पहले सब बातें निश्चित हो जाने दो।

उसके इस संयम ने कमलेश के आस्था-पक्ष को बल दिया था।

दूसरे दिन जब रज्जन दद्दा ने पूछा, 'तो फिर मैं फूफाजी को चिट्ठी लिखूंगा।' और भाभी बोल उठी थीं, 'अब सब ठीक है। इधर ये चिट्ठी लिखेंगे, उधर मैं दरोगाजी को उनके पास भेजूंगी। घर पहुंचने पर मुझे चिट्ठी डालना, अच्छा! और अगर मल्लिका को चिट्ठी लिखना चाहो, तो स्वतंत्रतापूर्वक लिखना, संकोच न करना। बल्कि बन्द लिफाफे में रख देना। चाहे तो सीलकर देना, ताकि मैं पढ़ न सकूं !'

उनकी इस बात पर कमलेश ने सिर नीच कर लिया था।

तब भाभी हंसती हुई बोल उठी थीं, 'अरे मैं यूं भी नहीं पढूंगी पगले! विश्वास तो पारस्परिक होता है।'

गरमी की छुट्टियां अभी आरम्भ भी न हो पाई थीं और लवंग की छमसी हो गई थी।

वृन्दावन पण्डित ने ब्याह की सारी शर्तें रज्जन पर छोड़ दी थीं। फिर कमलेश के पास भाभी का एक पत्र आया था और उसके अनुसार उसे पुनः रज्जन दद्दा के यहां जाना पड़ा था। भाभी से मिलने और चाय-स्नान-भोजन आदि से निवृत्त होने में कई घंटे बीत गए थे। उस दिन जब चाय पर मल्लिका न आई, तो कमलेश को कुछ सन्देह हो गया था। देर तक प्रतीक्षा करने के बाद अन्त में जब उससे रहा नहीं गया था, तो उसने पूछा, 'वहां सूचना भेज दी थी न भाभी ?'

भाभी मानो इसी क्षण की प्रतीक्षा में थीं। कुछ उदास होकर उन्होंने कह दिया, 'कुछ नई बातें पैदा हो गई हैं लला, जिनकी कभी सम्भावना न थी।'

कमलेश ने घबराते हुए पूछा, 'क्या, क्या कहा ! नई बातें पैदा हो गई हैं। कैसी नई बातें ?'

भाभी बोलीं, 'बात तो नई नहीं है। उद्घाटन ज़रूर नया है। घटना हुए कोई तेरह महीने बीत चुके। जिस लड़के के साथ मल्लिका का विवाह तै हो गया था, बल्कि होने जा ही रहा था, निमन्त्रण-पत्र तक छप चुके थे, उसके घरवालों को कहीं पता चल गया कि लड़की गर्भवती हो चुकी है। बस, इसी बात पर उन्होंने विवाह करना अस्वीकार कर दिया था।

कमलेश स्तब्ध हो उठा था। उसे तत्काल लवंग की जलती हुई चिता का स्मरण हो आया था।...अस्तित्व के नाम पर ऐसी हत्याएं ! आज के इंसान की यह हिंसक लीला। शैतान के दांत ही नहीं, पंजे भी खूंखार हो गए हैं !

उसका हृदय धक्-धक् करने लगा था। एक-एक क्षण की प्रतीक्षा असह्य हो उठी थी। एक झटके के साथ कुरसी से उठ खड़ा हुआ और कमर के पीछे हाथ बांधे नतशिर कमरे में इधर से उधर टहलता हुआ

बोला, 'हां, फिर क्या हुआ !'

भाभी जानती थीं कि कमलेश इस आघात को सह नहीं पाएगा। पर लाचारी थी, छिपाना तो और भी भयानक होगा।

तब वे बहुत गम्भीर वाणी में बोलीं, ' फिर यह सोचकर कि लड़के की जान कहीं खतरे में न पड़ जाए, ज़ोर लगाकर उन्होंने उसे झटपट विदेश भेज दिया। इधर दरोगाजी ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को दांव पर रखकर घोषित कर दिया कि मैं लड़के पर मुकदमा चलाए बिना मानूंगा नहीं ; भले ही उसका भविष्य नष्ट हो जाए। ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाएगा। उन्होंने समझा क्या है ?

' इसपर महीनों विवाद चलता रहा। रात में बारह-बारह बजे तक सलाह-मशविरे होते रहते थे। ज़रा सोचो, ऐसी दशा में मैं तुम्हें क्या लिखती और कैसे लिखती ! अन्त में समझौता इस बात पर हुआ कि विवाह तो यह न होगा, हां, अगर लड़की का विवाह कहीं तै न हो, तो निर्वाह-भर के लिए सौ रुपये महीना हम उसे आजीवन देते रहेंगे।'

कमलेश ने पूछा, 'और उस गर्भस्थ शिशु का क्या हुआ ?'

भाभी ने बतलाया, 'लड़का ठीक समय पर देहरादून के मेटरनिटी होम में पैदा हुआ था। मल्लिका अब भी वहीं है, अपने ननिहाल में। उसकी चिट्ठी मेरे पास आई है, जिसमें उसने लिखा है कि सारी बातें स्पष्ट रूप से जान लेने के बाद भी अगर वे मेरे साथ विवाह करना चाहें, तो इसे मैं अपना महान सौभाग्य समझूंगी। यद्यपि इसकी आशा मुझे बहुत कम रह गई है। कभी आएं तो कहना—तुम्हारे लिए उसने लिखा है—बुरा मत मानना, मिलने का वचन नहीं देती हूं।'

कमलेश की आंखें भर आई थीं। सारी कथा सुनकर वह चुप हो गया था।

भाभी बोलीं, 'यह बहुत अच्छा हुआ कि इस मामले में वर्ष-भर का अन्तर पड़ गया। नहीं तो मैं, बुआजी के सामने, मुंह दिखाने योग्य भी न रह जाती ! तो अब स्थिति यह है लला, कि हम लोग तो इस मामले

में आगे आएंगे नहीं। तुम एक बार नहीं, दो-चार बार अच्छी तरह से इस स्थिति पर विचार कर लो। जैसा तुम्हारा मन कहे, वैसा करो!'

कमलेश को भाभी का यह कथन बड़ा ही जड़ बल्कि अमानवीय जान पड़ा कि वे दोनों इस सम्बन्ध में आगे न होंगे। बड़ी कठिनाई से वह यह कहते-कहते रुक पाया था कि मुझे आपसे ऐसी आशा न थी।

तब कमलेश ने बिना एक क्षण रुके कह दिया, 'मैं अब भी अपनी बात पर स्थिर हूं। एक दिन तुम्हींने मुझको सोते से जगाकर बतलाया था—आज मुझको वहां नहीं, यहां सोना है लला, इस कमरे में।—तो अब आज भी तुम्हींको यह बतलाना पड़ेगा कि मुझे किधर जाना है? वैसे अगर मुझे पूरा पता मालूम हो तो मैं इस दशा में मल्लिका से मिलना चाहूंगा।'

इतने में भाभी ने दाईं जांघ के नीचे रखी हुई मैगजीन के भीतर से मल्लिका का वही पत्र निकालकर कमलेश के सामने रखते हुए कह दिया था, 'मैं तुमसे ऐसी ही आशा करती थी लला।'

अब चाय प्यालों में ढल चुकी थी और कमलेश चम्मच से अपने प्याले के ऊपर तैरती हुई पत्ती का काला टुकड़ा निकाल रहा था।

निर्मल के घर चाय पान के साथ ही मानव-कल्याण-विचारक समाज की गोष्ठी चल रही थी। आनन्द खिलौनों से खेलता हुआ कभी कुत्ते के कान को मुंह मे धर लेता, कभी हाथी की सूंड पकड़कर उसे फर्श पर पटकने लगता। इसी क्षण कमलेश ने सिगरेट की टुकड़ी ऐश ट्रे में डालते हुए कहा:

"कोई भी अस्तित्व अपने-आपमें पूर्ण, स्थिर और मौलिक नहीं होता। उसके पीछे किसी न किसी प्रेरणा का वरद हस्त अवश्य रहता है, जो न तो निर्विकार, निर्लिप्त और अनासक्त होता है, न साधु-वैरागी। और अस्तित्व

को ही अपना परम साध्य माननेवाला कोई व्यक्ति, आस्था का हाथ थामे बिना, एक भी सीढ़ी की रिक्तता की सम्पूर्ति नहीं कर सकता। अपने निर्माता के प्रति विश्वसनीय उसे रहना ही पड़ता है।"

हेमेन्द्र बाबू बोले, "तो कोई आस्था भी अपरिवर्तनशील और जड़ नहीं होती। उसमें विकास, अवान्तर और अर्थान्तर भी होता है। आस्थाएं अपना रूप बदलती हैं और स्थानान्तरित भी होती हैं। मतलब यह कि चरित्र के नाम पर आप कोई ऐसा परिपुष्ट और चिरस्थिर विधान नहीं बना सकते। जीवन-सौख्य के लिए आदमी अपने वर्तमान की जड़ता से ऊपर उठेगा और छलांग मारेगा। आस्थाओं की शृंखलाएं जहां कल टूटती हों, वहां आज टूट जाएं—अभी टूट जाएं, इसकी चिन्ता वह कभी नहीं करेगा। मैंने जब याकोतानी से विवाह कर लिया, तो जानते हैं आप मेरे पिताजी ने क्या कहा था ?"

कमलेश ने आगे के दो दांत झलमलाते हुए धीरे से कहा, "बतलाइए न, बिना बतलाए मैं कैसे जान सकता हूं !"

हेमेन्द्र बाबू हंसते-हंसते बोले, " कहा था, 'कर ले हेम अपना ब्याह, जैसा चाहे। मैं परवाह नहीं करता। उसने मेरे विश्वास का हाथ तोड़ा है, मैं उसके उत्तराधिकार की कमर तोड़ दूंगा। अपनी अर्जित की हुई प्रापर्टी में से एक पाई भी उसे न दूंगा।' मैंने उनकी इस प्रतिक्रिया पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। लेकिन दस वर्ष बाद जब कलकत्ता विश्वविद्यालय का निमंत्रण पाकर मैं वहां पहुंचा, कई संस्थाओं ने मुझे पार्टियां दीं, मान-पत्र दिए। तब उन्होंने मेरे ज्येष्ठ बन्धु क्षेमेन्द्र को भेजकर मुझे घर पर बुलाया, छाती से लगाकर प्यार करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा, 'मैं स्वयं नहीं जानता था हेम, कि परिवार का यश और गौरव मुझे अपनी मान्यताओं से कहीं अधिक प्यारा है।' फिर हिलोरें लेती भावना से उनकी आंखों में आत्मा का रस छलछला उठा।

" इसके बाद जब कुछ स्थिरचित्त हुए तो कहने लगे, 'धीरे-धीरे युग इतना बदल गया कि मुझे प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा : सचमुच हम पीछे

छूट गए हैं। मेरे अपने सगे भाइयों के विचार बदल रहे हैं, उनकी भावनाओं में विस्तार और विकास दिखाई दे रहा है। तब भला यह कैसे सम्भव था कि तुम्हें अपने निकट देखे बिना।···' और बस, वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि वे रो पड़े। वाइफ मेरे पीछे खड़ी थीं और बेबी उनकी गोद में था। तभी मेरी मां आ गई। पहले मैंने मां की चरण-धूलि अपने मस्तक से लगाई, फिर मेरी वाइफ ने। मां ने अपने पोते को गोद में ले लिया, उसे प्यार किया और बहू को वक्ष से लगाया, सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। मैं उस दृश्य को भला कभी भूल सकता हूं।

"तो मेरा अभिप्राय यह है कि आस्थाएं बड़ी विकासशील होती हैं। अस्तित्व की आकस्मिक संवृद्धि के समय भले ही हम सम्बन्धित आस्थाओं की कमर तोड़ देने की कल्पना कर लें, पर कालान्तर में ऐसा समय आ सकता है, जब हम यह अनुभव करें कि हमारा सारा अस्तित्व आज भी आस्था की गोद में खेल रहा है!"

प्राणदाजी अब तक चुपचाप बैठी थीं। पर अब हाथ का रूमाल ब्लाउज़ के ऊपर की संकरी गली में खोंसती हुई बोलीं, "क्षमा कीजिएगा हेमेन्द्रबाबू, मेरा अनुभव दूसरा है। मैं तो यही समझ पाई हूं कि आस्थाओं की अटल व्यापकता कभी असंदिग्ध नहीं हो सकती। मेरा विवाह हुए अभी बारह वर्ष भी नहीं बीते हैं। मेरे स्वामी पहले रेडियो की सर्विस में थे। उसी समय उनके साथ मेरा विवाह हुआ था। विवाह के बाद, वर्ष-भर के अन्दर ही मैंने एक इण्टरमीजिएट कालेज में नौकरी कर ली। उसी वर्ष मेरे एक बेबी ने जन्म लिया। फिर मेरे स्वामी जब एक करोड़पति प्रतिष्ठान में बारह सौ रुपये मासिक वृत्ति के पत्रकार हो गए, तो उन्होंने मुझे नौकरी छोड़ देने के लिए विवश कर दिया। उनका कहना था, 'अब हम पहले से कहीं अधिक सुखी हैं। पैसे की कमी तो कभी हो ही नहीं सकती।' फिर तीसरे वर्ष भगवान ने मुझे एक और बच्चा दे दिया। मैं अनुभव कर रही थी कि मेरा स्वास्थ्य

गिर रहा है। पर वे मुझे सान्त्वना देते रहे और दवाइयां चलती रहीं। कालान्तर में किसी तरह मैं ठीक होने लगी। पर इस बीच मैंने अनुभव किया, उनमें बड़ा संयम आ गया है। प्यार में अब वह अनिरुद्ध अनुयाचन नहीं रह गया। प्रेम-सीमाओं को छू-छूकर, आंख-मिचौनी खेलने में, आत्म-विभोर हो उठनेवाली दुर्लभ परिणति का स्थान अब सामान्य मनोविनोद ने ले लिया था। एक दिन मैंने जो इसकी चर्चा की, तो वे उबल पड़े। बोले, 'अगर तुम सोचती हो, ब्याह करके मैं तुम्हारे हाथ बिक गया हूं, तो यह तुम्हारा भ्रम है।' बाद में मालूम हुआ, वे कार्यालय की एक स्टेनो के साथ अपना मेघ-पुष्प निर्माण करने में व्यस्त हैं! अब मेरा कहना है कि उनके जिस प्यार ने मेरे जीवन में स्वर्गीय सुख की सृष्टि की, हमारा यह विच्छेद क्या उसीकी देन नहीं है? क्या आस्थाएं निर्मम नहीं होतीं?"

हेमेन्द्रबाबू हंस पड़े। बोले, "कौन कहता है, नहीं होतीं! मेरे साथ जो कुछ हुआ, उसे आप सुन ही चुकी हैं। पर आपका मामला तो बिलकुल स्पष्ट है। आपने आस्था के उस सुरक्षा-पक्ष की अवहेलना की, जिसको हम अस्तित्व की संज्ञा देते हैं। मैं ही यदि अपने अस्तित्व को प्रभावशाली न बना पाता, तो पिताजी मुझे कभी अपनाने को तैयार न होते। वह प्रेम, जिस-को हम रात-दिन मनुष्य के लिए एक ईश्वरीय देन कहते और मानते हुए नहीं थकते, केवल सौन्दर्य-बोध का एक यौन आकर्षण होता है! आपने अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य को सुरक्षित न रखकर बड़ी भूल की। सबसे बड़ा खतरा तभी पैदा होता है, जब हम अपने अस्तित्व के प्रति सचेत न रहकर यह समझ लेते हैं कि प्रेम रुपये-पैसे की भांति कोई ऐसी धरोहर है, जिसे हम जब चाहें, मांग सकते हैं। फिर परिस्थिति-संभूत मानवीय सम-वेदनाओं को आपने एक सार्वकालिक निष्ठा की संज्ञा दे दी। आपने यह भी सोचने और समझने की चेष्टा नहीं की कि शरीर छूट जाने के बाद जैसे आत्मा का अस्तित्व अन्तरिक्ष में लीन हो जाता है, वैसे ही स्वास्थ्य और सौन्दर्य क्षीण हो जाने के बाद प्रेम का संवेद्य मूल्य स्खलित हुए बिना नहीं

रहता। बात यह है कि जिसको हम आस्थावादी लोग कभी-कभी नैतिक दायित्व कह बैठते हैं, वह भी ध्यान से देखा जाए, तो हमारी सांस्कारिक भावुकता-मात्र होती है।"

"इसका मतलब तो यह हुआ," मुंह लटकाए बैठी हुई आशालता बोली, "कि किसी भी प्रेम को एकरस और समस्त जीवन-व्यापी समझना भूल है।"

"बिलकुल भूल है। क्योंकि आस्था स्वयं किसी नाविक द्वारा प्रेम-गंगा में बहनेवाली उस तरणी के सदृश है, जो गतिमान रहते हुए सदा दाएं-बाएं करवट लेती रहती है। जब हम अपने साथ नित्य प्रवंचना करते हैं, तब दूसरों के साथ क्यों नहीं करेंगे! शक्ति और सामर्थ्य-सम्पदा में अयोग्य होने पर भी हम अपनी लिप्साओं से कितने चिपके बने रहते हैं! योग्यतम व्यक्तियों की उपेक्षा करके हम अपनी प्रभुसत्ता से टस से मस नहीं होते। अपने प्रेमी से प्रेम करनेवाली उस पत्नी का खून करने में हमें लाज नहीं आती, जिसको हम कभी तृप्त नहीं कर पाए। चाय के स्वाद को अनुकूल बनाने के लिए जैसे हम उसमें चीनी घोल देते हैं, उसी भांति जीवन की सारी कटु-तिक्त यथार्थता को छिपाने के लिए मधुर भाषा की ओट में ऐसे-ऐसे आश्वासन, प्रलोभन और विश्वास दिलाते रहते हैं, जिनकी रूप-रेखा अनिश्चित, आधार-भूमि लचर और अवधि बहुत सीमित हुआ करती है। इस प्रकार मेरी राय में आपका यह प्रस्ताव निराधार ही नहीं भ्रमात्मक भी है कि 'मानव-कल्याण-विचारक समाज' की दृष्टि में मन, वचन और कर्म की एकता हमारे लिए परम आवश्यक है।"

इतने में सामने रखी तश्तरी से एक इलायची उठाकर उसका छिलका उतारते-उतारते उसके दाने दांत के नीचे दबाकर अधिकारीजी बोले, "तब तो आप हमारी मूल योजना के ही विरुद्ध होते जान पड़ते हैं। शायद प्रकारान्तर से आप यही कहना चाहते हैं कि किसी भी प्रकार हम इस समाज को बदल नहीं सकते। आपके मत से नैतिकता का सतत परिपालन मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध है। मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूं,

जैसे आप मूलतः प्रकृतिवादी हैं। पाप या अपराध पर भी आपका विश्वास नहीं है। धर्माधर्म, संयमासंयम, आपकी दृष्टि में परिस्थिति-जन्य हैं।"

अब हेमेन्द्रबाबू हंसने लगे। बोले, "मुझे ऐसा कुछ मालूम न था कि विचार-विनिमय का स्थान आपकी शल्य-क्रिया धारण कर लेगी। खैर, जो भी हो। हमको अब मूल विषय पर ही बात करनी चाहिए। तो मैं आपको इतना और बता दूं कि जिसको आप लोग नैतिक-अनैतिक संज्ञा देते-देते विश्वासघात और पाप तक कह बैठते हैं, वह भी आस्थाओं का समीकरण, उन्नयन और विस्तार होता है। मनुष्य स्वभावतः 'अधिकस्य अधिकं फलम्' का पक्षपाती होता है। मेरी भार्या याकोतानी ने विवाह के दिन ही एक ऐसी विचित्र बात कह दी थी, जिसे मैं जीवन में कभी भूल न सकूंगा। उसने कहा था, 'कभी-कभी मेरे मन में आता है—हमारे सम्बन्धों में एक ही बात विग्रह पैदा कर सकती है। वह है उन्नयन। आपसे अधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति, जिस दिन मेरे जीवन में आ गया, हो सकता है, उसी दिन मेरा ध्यान आपकी ओर से हटकर उसपर चला जाए'।"

"यह बड़ी विचित्र और अनोखी बात है। कोई नारी, विवाह की घड़ियों में, अपने स्वामी से ऐसी बात कहने का साहस कर सकती है, सहसा इसपर विश्वास नहीं होता। बल्कि मुझे तो यह एकदम अस्वाभा-विक जान पड़ता है।" कमलेश ने टोक दिया।

"अस्वाभाविक तो नहीं, पर दुस्साहसपूर्ण मुझे अवश्य जान पड़ा था। लेकिन याकोतानी का जन्म अमेरिका जैसे स्वतन्त्रताप्रिय देश में हुआ था। इसलिए उसकी मुस्कान-माधुरी में सभी प्रकार की बातें विलय हो जाती थीं।" हेमेन्द्रबाबू ने स्वयं भी मुस्कराते हुए उत्तर दिया। फिर वे आगे बढ़ते हुए बोले, "इसका परिणाम यह हुआ है कि जब कभी मैं उससे पूछता हूं, 'मेरी तरफ से तुम्हारा ध्यान तो नहीं हट रहा है,' तभी वह मेरे निकट आकर, मेरा चिबुक उचकाकर पूछने लगती है,

"क्या कहा ? फिर तो कहना !' और तत्काल प्यार-विनिमय में हम दोनों हंस पड़ते हैं। क्योंकि यह तो मानेंगे ही कि जीवन में आगे वही आता है जो 'इनीशियेटिव' लेने की जोखिम लेता है। आप हमको सभापति न चुनकर किसी दूसरे को चुनते, तो इसमें बुरा मानने की क्या बात होती ? मुझमें कुछ तो ऐसी बात आपने पाई होगी, जो दूसरों में नहीं है। लेकिन मेरे इस सम्मान का भागी जो कोई भी अपने को समझता होगा, कौन कह सकता है कि उसकी आस्था को आपने आघात नहीं पहुंचाया ? याकोतानी अगर किसी ऐसे व्यक्ति से अपने यौन सम्बन्ध स्थापित कर ले, जो कीर्ति में या वैभव में, मेरी अपेक्षा अधिक क्षमताशाली हो, तो उसके इस कृत्य में अपराध या पाप देखना क्या हमारे लिए अनैतिक न होगा ? जिन आस्थाओं को टूटता हुआ देखकर हम आज रोना प्रारम्भ कर देते हैं, उनके मूल में अपने अस्तित्व के प्रति क्या हमारी मोह-निद्रा नहीं होती ? न्याय से परे मैं धर्म की कोई स्थिति नहीं मानता और उस संयम को तो बहुत ज़लील समझता हूं, जो अवसर पर प्यासे को अंजलि भर पानी न पिलाकर घर के पाइप को खुला छोड़ देता है।"

प्रबोधबाबू का मुंह लटक गया था और लीला मुस्करा रही थी।

कमलेश सोच रहा था, 'ऐसे समय अगर मल्लिका भी आ जाती।·····मगर आ कैसे जाती ? मैंने उसको कोई सूचना तो दी नहीं थी।'

इतने में आंगन में कोई परिचित स्वर सुनाई पड़ा, 'अरे यहां कमलेश ठहरा है और आप फरमा रहे हैं—बाहर जाओ !'

कमलेश गोष्ठी से उठते हुए बोला, "प्लीज़ वेट ए लिटल।" और आंगन में आ पहुंचा।

लगभग आठ इंच लम्बे, शुष्क, म्लान, उलझे छितराए केश; सिर पर घाव, जिसपर रक्त-चिह्न, फटी-पुरानी चीकट हो रही कमीज, नंगे पैर, जिनपर मैल जमा हुआ, हाथों और पैरों के बढ़े हुए नख, जिनमें मैल

भरा हुआ। आंखें कुछ-कुछ लाल, जिनमें डोरे पड़े हुए।

कमलेश ने झट दोनों बाहु फैलाकर उसे गले से लगा लिया। कण्ठ भर आया उसका, और आंखों में आंसू छलछला उठे। हाथ पकड़कर उसे अन्दर ले जाने लगा तो वह बोला, "ना, मुझे वहां मत ले जाओ। नहीं, नहीं, मैं, मैं तो तुमसे एक बात कहने चला आया—सिर्फ एक बात।"

लेकिन कमलेश नहीं माना, "मैं तुम्हारी सभी बातें सुनूंगा।"

"वहां, सबके सामने! नहीं भैया।"

"क्यों नहीं? तुमको अपनी बात सबके सामने कहनी होगी। यहां कोई बेगाना नहीं है। यह निर्मल है। तुमने इसको पहचाना नहीं?"

कमलेश चाहता था, उसे अन्दर ले जाए, पहले उसका परिचय दे, फिर अपना वक्तव्य। नवागन्तुक निर्मल को घूरकर देखने लगा।

तब तक निर्मल बोल उठा, "संदीप भाई, जब संयोग से तुम आ ही गए, तो आओ, नहा-धोकर कपड़े बदल डालो, खाना खाओ और यहीं आराम करो।"

संदीप हंसते-हंसते बोला, "तारिणी को सड़क पर खड़ा छोड़ आया हूं। तुम दोनों को यह बताने चला आया था कि मिलना चाहो, तो मिल लो। मगर मैं देख रहा हूं, तुमको आस्थाओं से कोई मतलब नहीं रह गया! तुम्हें पहले चाहिए अस्तित्व। और तुम देख ही रहे हो, मैं अपने अस्तित्व को लात मार चुका हूं। मगर कमलेश, तुम कितने मूर्ख निकले, जो तुमने तारिणी को अछूता छोड़ दिया। हः-हः-हः-हः! अभी मैंने उससे यही सब पूछा था—उत्तर में उसने मुझे जूते से ठोका! देखो, यह घाव उसीका है। मगर मैं इसे सौभाग्य की बात समझता हूं। मेरा खयाल है, प्रेम ही घृणा को व्यक्त करता है। जब उसने मुझसे घृणा की, तो ज़ाहिर है कि प्रेम भी करती रही होगी! हा-हा-हा-हा!"

और कमलेश ने देखा—सिर का घाव दिखलाते हुए भी संदीप के मुख पर मुस्कराहट है, जिसमें उपालम्भ का कोई चिह्न नहीं है।

तारिणी संसार से विदा ले चुकी थी। संदीप ने उसपर संदेह किया था। उसका कहना था, 'रात को कमलेश दोनों दिन वहीं सोने क्यों आता था ?' उसने कमलेश पर भी सन्देह किया था, 'रात को तुम उसे अपनी कविताएं सुनाने क्यों आए ? आए भी तो फिर वहीं क्यों रह गए ?' उसके बाद तारिणी भरी गंगा में डूबकर, सदा के लिए इस दुनिया से उठ गई थी ! फलतः वह विक्षिप्त हो गया। सदा वह यही समझता रहा कि उसे कमलेश ने कहीं छिपा रखा है। अब भी उसे इस बात पर विश्वास नहीं हुआ कि तारिणी इस संसार में नहीं है। तब से उसकी स्थिति इतनी दयनीय बन गई है कि देखकर बहुतेरे लोगों को रुलाई आ जाती है। न जाने कहां-कहां मारा-मारा फिरता रहा है। कई वर्ष बाद अकस्मात् यहां आ पहुंचा है।

कमलेश की सिसकियां नहीं थम रही थीं। अब गोष्ठीवाले कमरे से हेमेन्द्र, प्राणदा, पन्नगारिसिंह, आशालता, लीला और प्रबोध, अधिकारी तथा आनन्द को गोद में लिए हुए रानी सबने आकर उसे घेर लिया था।

संदीप जीने की ओर मुड़ते हुए रुक गया और कमलेश की ओर उन्मुख होकर बोला, "मगर तुम रोने क्यों लगे कमलेश ? तुम्हारा तो दावा था कि मैं तारिणी से प्रेम कर ही नहीं सकता था। वह मेरी भाभी होती थीं। इसलिए तुमने उसकी मर्यादा की रक्षा ही की थी। अब मेरा कहना है कि अगर तुमने उस दुर्लभ अवसर से लाभ उठा लिया होता तो वह तुम्हारी तो हो जाती ! और तुम्हारी बनकर भरी सड़क पर इस तरह मेरी मरम्मत तो न करती।"

लीला ने एक बार संदीप की ओर ध्यान से देखा, फिर कमलेश की ओर।

भर्राई हुई वाणी में कमलेश ने पूछा, "तो तुम्हारा विश्वास है कि वह अभी जीवित है ?"

"लो, तुम उसके जीवित रहने पर भी सन्देह करते हो ! हा-हा-हा-हा !

कितना हसीन मज़ाक किया है तुमने ? मगर मैं भी कम नहीं हूं। सड़क पर जब वह एक गाड़ी से उतर रही थी, उसी समय मैं उससे पूछ बैठा, "आजकल किसके ज़ेरे साये में हो जानेमन ?" मेरा इतना पूछना था कि उसकी ऊंची एड़ीवाला सैंडिल इस उत्तर के साथ मेरे सिर पर आ पड़ा, 'इसके ! बदतमीज़ कहीं का !!'

" और इसके लिए मैंने उसे धन्यवाद दिया था कमलेश। तब तक बहुतेरे लोग जमा होकर उसीपर थूकने लगे। मैंने उन्हें समझाया, 'बिगड़ने की बात नहीं है। सच्ची बात कहने का सही दाम मुझे मिल गया !' तब तक वह जा चुकी थी।...मगर इसमें बुरा मानने या दुखी होने की कोई बात नहीं। यह दुनिया ही अपने-आपमें एक अजीब चक्कर है। हम सब चक्कर में हैं। तुम भी ज़रूर किसी चक्कर में होगे। तो अब हम चलें दोस्त।"...फिर चलते-चलते रुककर बोला, "हां, मैं तो तुम्हारे लिए वही सिगरेट ले आया हूं, जो तुम्हें बहुत पसन्द थी।"

कथन के साथ संदीप ने कमीज़ की जेब से एक पैकेट निकाला, जिसमें सड़क से बीन-बीनकर एकत्र की हुई अनेक अधजली टुकड़ियां थीं, उनके साथ केवल एक सिगरेट पूरी और नई थी। उसीको निकालकर संदीप ने कमलेश के आगे कर कह दिया, "लो, लो। बहुत दिनों के बाद मिले हो। घर पर आते थे, तब तारिणी पूरा स्वागत करती थी। उसकी याद में आज इतना ही सही !"

इतने में हेमेन्द्र बाबू ने प्रश्न कर दिया, "आपका परिचय कमलेश बाबू ?"

"आस्थाओं के संघर्ष की कहानी है। पहले ठहरने की व्यवस्था कर दूं, तो बतलाऊं।" कमलेश का उत्तर था।

संदीप के हाथ से सिगरेट लेकर उसने मुंह से लगा ली। जलाकर एक कश लिया, फिर उसकी कमर में हाथ डालते हुए कहा, "मैं अब तुम को कहीं जाने न दूंगा संदीप। तुम मेरे साथ ही रहोगे।"

"कौन रह पाता है और कौन रख पाता है ?" कथन के साथ संदीप

मुस्करा रहा था। उसकी आंखों की पलक, बरौनियां और पुतलियां हंस रही थीं। मूछों के साथ दाढ़ी तक हंसती जान पड़ती थी।

प्रबोधबाबू संदीप की ओर ध्यान से देख रहे थे। लीला को छोड़कर गोष्ठी के सभी लोग पुनः उसी कमरे में चले गए।

तभी कमलेश ने निर्मल की ओर उन्मुख होकर धीरे से कह दिया, "एक नाई बुलवाकर पहले इनके बाल ठीक करवा दो। हजामत बनवाकर अच्छी तरह नहला दो। कपड़े मैं निकाल दूंगा। मेरे कपड़े इनको बिलकुल फिट बैठेंगे। मगर इसके पूर्व चाय-टोस्ट का प्रबन्ध होना चाहिए।"

"अभी लो।" कहते हुए निर्मल ने संदीप के कन्धे पर हाथ रख दिया। बोला, "इधर आ जाओ भैया।"

संदीप चुपचाप कमरे के अन्दर जाकर हरएक वस्तु को ध्यान से देखने लगा। फिर एक स्थान पर खड़ा होकर बोला, "यह ऑयल पेंटिंग तो ओरछा के दुर्ग के राजमहल की है। इसमें मैं एक रात ठहर चुका हूं। मगर तुमने फिर उस सुहावनी रात का विवरण नहीं बतलाया कमलेश। आखिर तारिणी से कुछ बातें तो हुई ही होंगी। अपनी कोई कविता सुनाए बिना तुम्हारा मन न माना होगा। आज उसने मुझे अच्छी तरह अपमानित कर लिया है। फिर से सन्धि होने का कोई अवसर नहीं रह गया। अब संकोच किस बात का ?"

"मगर तुम यहां आ कैसे गए ? मेरा कुछ पता तो तुमको था नहीं ?"

"तुमको पता है कि हम पैदा ही क्यों हो गए ? हो गए तो मिले क्यों ? परस्पर मित्र कैसे बन गए ? बन गए तो फिर यह विच्छेद कैसे हुआ ? तुम समझते हो विच्छेद हो सकता है, मिलन नहीं हो सकता ? अरे हम इस घर में आनेवाले एक आदमी के पीछे-पीछे चले आए। हा-हा-हा-हा ! जो मार खाने का जोखिम ले सकता है, तुम समझते हो, वह किसीके घर नहीं जा सकता ? फिर मिलनेवाले को कौन रोक सकता है—अगर कोई उसे मिलाना ही चाहता है ?"

इतने में चाय-टोस्ट, दालसेव और मिष्टान्न एक थाली में रखे हुए

निर्मल के साथ रानी आं पहुंची। आनन्द सो रहा था।

रानी जब चाय ढालने लगी, तब संदीप बाल उठा, "कोई नहीं कह सकता कमलेश, हम कब कहां जा पहुंचेंगे ?"

रानी की ओर उन्मुख होकर कमलेश किंचित् मुस्करा उठा और लीला की ओर संकेत कर बोला, "यही मेरी भाभी हैं दीदी।"

लीला और रानी एक-दूसरे को नमस्ते करने लगीं।

संदीप चाय का एक घूंट कण्ठगत करते हुए लीला की ओर ध्यान से देखने लगा।

निर्मल अब तक खड़ा था। अब एक ट्रंक पर रखी हुई पुस्तकें उसने मेण्टलपीस पर रख दीं। और ट्रंक पर वह स्वयं बैठ गया।

इतने में हरी आ गया। लीला ने पूछा, "बड़ी देर कर दी तुमने ?"

हरी ने उत्तर दिया, "बस ही देर से मिली बहूजी।"

तभी निर्मल ने कमलेश से कह दिया, "मैं यहीं रहूंगा। तुम अब वहीं पहुंचो, प्रस्ताव बना लो और बैठक खत्म करो जल्दी से।"

कमलेश के उठते ही संदीप हंसने लगा। फिर दाढ़ी के भीतर अंगुली डालता हुआ एकाएक बोला, "मैं अगर दाढ़ी न मुंड़वाना चाहूं तो ?"

कमलेश ने उठकर जाते-जाते कह दिया, "नहीं, जब तक तुम्हें व्यवस्थित न कर लूंगा, तब तक मुझे नींद न आएगी।"

लीला द्वार पर आकर हरी की ओर उन्मुख होकर धीरे से बोली, "जहां कहीं नाई मिले, फौरन साथ ले आओ। हजामत के सिवा उसे उबटन लगाने तथा नहलाने-धुलाने का काम भी करना होगा।"

हरी जब चलने लगा तो निर्मल ने कह दिया, "तै करके लाना। ज़्यादा से ज़्यादा दो रुपये में। समझे ?"

संदीप दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा।

उधर अब कमलेश बोल रहा था :

"जो लोग समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, बेईमानी, धूर्तता, ज़ोर-जुल्म को आंख मूंदकर देखते और सहते जाते हैं, मैं उन्हें कायर और नपुंसक

समझता हूं। हम वर्तमान की ओर दृष्टि रखकर उस भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं, जिसपर मुझे सदा आस्था रही है। मेरी धारणा है कि समय हमारे अनुरूप है। युग हमारे साथ है। तो इस प्रस्ताव के अनुसार, अब ऐसा समय आ गया है कि समाज-विरोधी तत्त्वों की न केवल डटकर आलोचना की जाए, वरन् उसका सक्रिय विरोध भी किया जाए।"

प्रबोधबाबू ने पूछा, "सक्रिय से आपका क्या मतलब है?"

कमलेश ने उत्तर दिया, "असहयोग और सामाजिक बहिष्कार।"

आशालतादेवी बोल उठीं, "क्या हम इतने सशक्त हैं कि नैतिकता के आधार पर अपने परिवार और समाज के निकटतम बन्धु-बान्धवों को त्याग सकें? उनके साथ संघर्ष कर सकें?"

"अगर हम आज नहीं हैं तो कभी न हो सकेंगे।" कमलेश ने उत्तर दिया, "समाज-विरोधी तत्त्वों के साथ एक बार खुलकर लड़े बिना गति नहीं है। जिन लोगों को हमारी इस योजना में शंका हो, मैं चाहूंगा कि वे इसमें भाग न लें। संशयालु, कर्तव्यभीरु, कायर और प्रतिक्रियावादी लोगों के साथ हमारा कोई समझौता नहीं हो सकता। मैं तो उन्हीं तरुणों का सहयोग चाहता हूं, जो इस नियोजन में हमारा हाथ बंटाएं, साथ दें, और सदा आगे की ओर ही देखें। मैं एक बार हेमेन्द्रबाबू के इन शब्दों को दोहराना चाहता हूं कि—अमर बनने के लिए यह आवश्यक नहीं कि तुम अमित सुन्दर, सुखी और ऐश्वर्यशाली बनो—लेकिन यह बहुत आवश्यक है कि सत्य को पहचानो, भले ही यातना, उपेक्षा और कष्टों का जीवन भोगना पड़े।"

कमलेश के इस कथन पर सभी लोग मर्माहत हो उठे।

हेमेन्द्र बाबू मुस्कराते हुए बोले, "अब तक मैंने जो बातें कीं, उनके मूल में मेरा यही अभिप्राय रहा है कि सारी बातों को आप एक बार अच्छी तरह समझ लें। हो सकता है कि प्रारम्भ में सत्ताधारी लोग आपकी इस योजना का उपहास करें। यह भी हो सकता है कि आगे चलकर आप राजनीतिक प्रभुसत्ता के कोप-भाजन भी बनें। लेकिन इस

बात को आप कभी न भूलें कि सत्य की खोज, न्याय की पुकार और कर्तव्यनिष्ठा के क्षेत्र में, आहुति और बलिदान की भावना, जिस देश के तरुणों में नहीं होती, उसका गौरव कभी अक्षुण्ण नहीं रह सकता !"

हेमेन्द्र बाबू के इस कथन के बाद उपस्थित जन भावना में डूबकर 'वाह-वाह' कह उठे और अधिकारीजी ने कह दिया, "आप सब लोगों को धन्यवाद ! अब आप लोग चार बजे रामलीला ग्राउंड में होनेवाले इस समाज के खुले अधिवेशन में ठीक समय पर पधारने की कृपा करें।"

हेमेन्द्र बाबू बोले, "एक बात रह गई ; प्राणदाजी, आप इस प्रस्ताव के सक्रिय-विरोधी पक्ष पर बोलेंगी और कमलेशजी, आप आस्थावाद के लोक-कल्याणकारी पक्ष पर।"

अन्त में प्रबोधबाबू ने कह दिया, "रात्रि को आठ बजे आप सब लोग न्यू एरा होटल में प्रीतिभोज के लिए हमारी ओर से आमन्त्रित हैं।"

जब यह बैठक समाप्त हो रही थी, तब संदीप क्षौर-कर्म से निवृत्ति पाकर उबटन लगवा रहा था, रानी और लीला भोजन बनाती हुई हंस-हंसकर बातें कर रही थीं।

कमलेश संदीप के लिए कपड़े लेकर जब उसके पास पहुंचा, तो उसने देखा कि वह आज का समाचारपत्र पढ़ रहा है, उसकी आंखें आंसुओं से डबडबाई हुई हैं।

सहसा कमलेश ने प्रश्न कर दिया, "क्यों, क्या बात हुई ?"

एक निःश्वास लेकर संदीप ने उत्तर दिया, "मैं बड़ी देर से यही सोच रहा हूं कमलेश, कि तुमने लवंग के निधन का दुःख कैसे सहन कर लिया !"

"कैसे बतलाऊं संदीप, कि लवंग के निधन ने ही नहीं, तारिणी भाभी के आत्मघात ने भी मुझे कितना तोड़ डाला था ! लेकिन फिर क्रमशः मैंने अनुभव किया कि कोरी भावनाएं आस्था के आदर्शवादी पक्ष को भले ही शान्ति और संतोष देती रहें ; लेकिन मनुष्य के इहलौकिक जीवन के लिए उनका अस्तित्वमुखी रूप ही अधिक कल्याणकारी होता है।

लेकिन अब तुम नहा डालो तुरन्त, मुझे भूख लग रही है।"

इतने में हरी आकर बोला, "चलिए, नहा लीजिए।"

संदीप उसके साथ चल दिया। कमलेश सोच रहा था, 'लवंग, तारिणी, लीला और मल्लिका !'

७

स्नान करने के बाद संदीप कुछ ऐसी नवीनता का अनुभव कर रहा था जो उसके शरीर को स्फूर्ति और मन को प्रेरणा देती थी। फिर उजले वस्त्र पहनने के बाद उसने आदमकद दर्पण में अपने-आपको देखना चाहा, जिसका वहां अभाव था। तब उसे भान हुआ—कोई न कोई अभाव तो जीवन में बना ही रहता है। जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि वह नया जीवन प्राप्त कर रहा है। उसके आसपास ऐसे लोग हैं, जो उसे स्नेह करते, चाहते हैं। फिर यह सोचकर उसका मन उमंगों से भर गया कि मुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता। एक बार तो उसे यह चेतना भी हुई कि मेरा कहीं कुछ नहीं बिगड़ा है। एक बार उसे भगवान की इस अद्‌भुत रहस्यमयी रचना का भी ध्यान आया। फिर तारिणी की याद आ गई। उसके अप्रतिम रूप, सौन्दर्य और असीम प्यार की। जब कमलेश ने कहा, "आओ, अब भोजन करें।" तब वह कुछ चौंक पड़ा, "ऐं, क्या कहा, भोजन ? हां, भोजन।" और वह चुप हो गया। उसके सामने भोजन का थाल आया और उसने अपने आसपास कमलेश और निर्मल, रानी और लीला, को चलते-फिरते, मुस्कराते और आग्रह करते देखा।

"तुम यहां बैठ जाओ न भाभी।"

"और अगर मैं बाद में खाऊं, पहले आप लोगों को खिला दूं ?"

"ना, साथ बैठकर ही खाना होगा। हरएक समय और संयोग का एक मूल्य होता है।"

संदीप सोच रहा था :

'हां, कुछ भी नहीं गया है। माना कि तारिणी चली गई, मगर और भी लोग हैं, जो मुझे कम अच्छे नहीं लगते।...तारिणी जैसा प्यार तो दुर्लभ है अभी, लेकिन स्नेह, आदर और निकटता का यह वातावरण भी मुझे कम सुन्दर नहीं लग रहा है।'

फिर उसके मन में प्रश्न उठा, 'मान लो कोई मुझे प्रिय लग ही रहा हो, पर उसके साथ मेरा सम्बन्ध क्या ? फिर वह स्वयं ही उत्तर देने लगा—पहले वातावरण बनता है, फिर अनुकूल परिस्थितियां जुट जाती हैं। फिर कोई न कोई अपना बन ही जाता है।—मैं कमलेश की सहृदयता तथा सहानुभूति पर आश्रित-अवलम्बित हो गया हूं। अत्यन्त दयनीय मेरी स्थिति है।...सब कुछ याद आ रहा है।' कभी-कभी संदीप किसी वस्तु-विशेष को टकटकी लगाकर देखता रहता। वह दृष्टि बड़ी वेधक होती। रानी अपनी साड़ी का आंचल खींचकर वक्ष को ढक लेती। तब उसकी दृष्टि लीला की कसी चोली पर अटक जाती और उसके मन में आता, 'मेरी तरह इस चोली के भीतर भी कसमसाहट होती होगी।' फिर ध्यान मोटर के हार्न पर चला जाता, 'तब तो उस कसमसाहट की आवाज़ कई गुना तेज़ होनी चाहिए।...जो लोग उन आवाज़ों को सुन नहीं पाते, वे बहरे होते हैं ! मैं ऐसा बहरा बनकर कितने दिन जी सकता हूं ! और वक्ष-कन्दुकों के मिलन-मार्ग को निरन्तर निर्देशन देनेवाले ये ब्लाउज़ ! कभी कोई इनपर टीका-टिप्पणी भी नहीं करता ! क्या इसका यह अर्थ नहीं कि सभ्यता के चरण बहुत आगे बढ़ आए हैं ? हमी एक बेवकूफ हैं जो आगे बढ़ने में हिचकते हैं !

'तो मैं अभी जी सकता हूं, मुझे जीवन का सम्पूर्ण रस अभी मिल सकता है। ये लोग मेरे लिए कुछ कर सकते हैं। अधिक नहीं तो दो-चार मास तो मैं इनके साथ व्यतीत कर ही सकता हूं। कुछ इनकी सहानुभूति से—कुछ अपने अनुरोध और निवेदन से।'

फिर संदीप को ध्यान हो आया—अस्वस्थता के कारण कमलेश ने मेरे लिए एक वर्ष की अवैतनिक छुट्टी स्वीकार करवा दी थी। पता नहीं

वह स्वीकार हुई थी, या नहीं !—क्योंकि मैं स्वयं ही अपने क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ था। लोग रास्ते चलते मुझे घूर-घूरकर देखते और आपस में फुसफुसाते थे। अपने साथी के कान के पास मुंह ले जाकर कह उठते थे, 'संदीपजी हैं, जिनकी बीवी ने इसलिए गंगा में डूबकर अपने प्राण त्याग दिए कि इन्होंने उसपर अविश्वास किया था।' फिर उसने उत्तर दिया था, 'हां भाई, जमाना ही ऐसा आ गया है। विश्वासघात का कोई काम उसने किया होगा।'··· 'अरे हट, ऐसा कभी हो सकता है ! खोटा कर्म कोई निर्लज्ज स्त्री ही कर सकती है। जिसे खुदकशी करने की ज़रूरत नहीं पड़ सकती। खुदकशी तो वे ही करते हैं, जिनकी आत्मा दूध की जैसी उजली होती है ! हालांकि उन्हें दुनिया कायर समझती है !'

फिर एक निःश्वास। दुःखद स्मृतियों का यह दण्ड सबको सहन करना पड़ता है। कोई व्यक्ति इससे बच नहीं सकता।

कमलेश सोच रहा था, 'यह समय बहुत सावधान रहने का है। संदीप के अशांत मन को यदि किसी प्रकार संतुलित रखा जा सके, उसे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न हो, तो उसकी विक्षिप्तता सहज ही दूर हो सकती है। ऐसे समय यदि···· ! नहीं, ऐसा कुछ मैं करूं, यह सम्भव नहीं है। मैं ऐसी कोई व्यवस्था नहीं कर सकता। मानवी वृत्तियों को जगाने के लिए मैं अमानवी वृत्तियों का अवलम्ब कदापि न लूंगा।

'तब यह संदीप स्वस्थ नहीं हो सकता। तारिणी की पूर्ति उसकी सोई पिपासा जगाए बिना न मानेगी। इसलिए कुछ न कुछ करना ही होगा। मगर फिर प्रश्न उठता है कि करनेवाला कोई और होता है।'

रानी के मन में आता था, 'खामखां एक टंटा पाल लेते हैं। उस दिन अमुक देवताजी आए थे। अंगरेज़ी, हिन्दी, फिलॉसफी, तीन विषयों के एम० ए०, सो भी प्रथम श्रेणी में। सुन्दर व्यक्तित्व। दिन-भर यह बनाओ, वह चीज़ मंगवाओ, यही लगा रहा। परसों कमलेशजी आए। खैर, मान लिया, बड़े ही चरित्रवान व्यक्ति हैं और मेधावी व्यक्तित्व है उनका। पर इस पागल का भी इतना ध्यान !—तो हम इसी-भर के

हुए ।'

लीला को संदीप का चेहरा-मोहरा बड़ा प्रभावशाली जान पड़ता था। 'कुछ दुर्बलता अवश्य है, पर उतनी नहीं कि रक्त-मांस की कोई खास कमी जान पड़ती हो। दस दिन में रंग बदल सकता है। जब दाढ़ी बढ़ी हुई थी, तब तो जेल का कैदी लगता था। अब बात दूसरी है। आंखें बड़ी-बड़ी, सदा सकुचाई-सी। कहने को जैसे सभी कुछ है उनके भीतर। पर फिर सवाल उठता है कि कहे कैसे। नयनों की भाषा तो कहती है, चाहे जो अर्थ लगा लो उनकी चितवन का। मगर मैं यह सब बेकार सोचती हूं। मुझसे कोई मतलब तो है नहीं। फिर उनका खयाल भी रखना पड़ता है।'

कभी-कभी संदीप का सारा व्यक्तित्व उसे रहस्यमय प्रतीत होता था। वह सोचती थी, 'इस आदमी की मानसिक शक्ति बहुत गहन होनी चाहिए।' जब उसकी दाढ़ी बनाई जा रही थी, तब भी एक बार उसने रानी के पास जाकर कहा था, 'दीदी, ज़रा देखो चल के। मुझे तो लगता है कि संदीप बाबू की दाढ़ी अगर इसी दशा में छोड़ दी जाए, तो उनके भीतर-बाहर की ठीक-ठीक रूपरेखा स्पष्ट हो जाएगी।'

फिर जब दोनों खिड़की की ओर से उसे देखने आ पहुंचीं तो लीला ने कहा, 'यह जितना भाग उजला-उजला निकल आया है, यही इनका ऊपरी रूप है और जितना काला-काला केशमय शेष बचा है, वही सब भीतरी रूप। क्या ख्याल है तुम्हारा ?'

इसपर रानी ने मुंह बिचकाते हुए उत्तर दिया था, 'होगा, अपने को क्या ? फिर कविजी की दुनिया का मामला ठहरा। आलोचना की जोखिम कौन ले ? हम तो नहीं लेते कभी। सोचते ही नहीं एकदम से। तुम्हारी बात और है।'

लीला विचार में पड़ गई थी, 'कहती तो ठीक हैं दीदी।' और तब वह कुछ ऐसी स्थिति में पहुंच गई, जैसे पानी के ऊपर, मुंह से भरता हुआ घड़ा, पहले तो हाथ में बना रहे पर जब यह पूरा भर जाए, तो

हाथ से छूटकर जलाशय में डूब जाए !

निर्मल संदीप से परिचित था। जानता था कि विवाह हो जाने के बाद उसने मित्रों को विशेष समय देना छोड़ दिया था। उसने अनुभव किया था कि पत्नी-मात्र में उसका जीवन और जगत् सीमित हो गया है। ऐसे व्यक्ति के साथ ऐसी दुर्घटना ! दुर्भाग्य और किसे कहते हैं ?

खरगोश के बच्चों की आंखें छोटी, कान उठे, मुंह गुलाबी, दृष्टि में कौतुक, जिह्वा से कुछ खाने और दांतों से कुतरने में सृष्टि का ऐसा कलापूर्ण रचनात्मक सौष्ठव कि आदमी अपने में खो जाए !

मकान के पहले तल्ले पर चारों ओर छज्जा, ऊपर छत, जिसपर मुंडेर। छज्जे पर खड़े होकर ऊपर देखने में मुंडेर पर दृष्टि जा पड़ती। कभी-कभी एक गिलहरी पूंछ उठाए भागती हुई दिखाई देती। संदीप कभी उसे देखता, कभी खरगोश के बच्चों को। एक बार तो उसने आनन्द को भी प्यार से देखा।—फिर एकाएक आंखें भर आईं तो छिपकर आंसू पोंछ लिए।

इन आंसुओं के झरने को कौन रोक पाया है !

वह भोजन करने बैठा तो लीला ने प्रश्न कर दिया, "भोजन कैसा लगता है भाई साहब ?"

कमलेश मन ही मन हंस पड़ा !—मुझसे भी भाभी ने पूछा था, 'रात कैसा लग रहा था आपको ? धन्य हो देवी ! तुम सब कुछ पूछ सकती हो ! तुम्हारी सामर्थ्य की सीमा नहीं है।'

'लेकिन मैं भूल रहा हूं', कमलेश फिर चिन्तन में पड़ गया, 'भाभी के इस क्रीड़ा-कौतुक-प्रिय रूप में प्रबोधबाबू का हाथ है। जिस नारी की यौन भूख अतृप्त रह जाती है, उसकी वासनाएं दस आंखों से देखतीं, दस पैरों से चलतीं, दस पंखों से उड़तीं और दस भुजाओं से अपने प्यारे को अपनी गदराई देह-लता में समेट लेती हैं।—तो दोष भाभी का नहीं है, उसी प्रबोध का है।

'मगर हम तो मा० क० वि० समाज के अधिवेशन में यह प्रस्ताव

पास कराने जा रहे हैं कि समाज-विरोधी तत्त्वों का सक्रिय विरोध किया जाए। क्या यह व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से पापी नहीं है ? पांच बजे यह प्रस्ताव पास हो जाएगा और आठ बजे हम उसी प्रबोध द्वारा आयोजित प्रीति-भोज में सम्मिलित होंगे ! यह हमारी सचाई है !'

एक क्षण में संदीप फिर इहलोक में आ गया। अचार का मसाला चखते-चखते उसने उत्तर दिया, "भोजन की क्या बात है ? जान पड़ता है, हम एक नये युग में आ पहुंचे हैं। पर भोजन का नाम लेकर आप और कुछ तो नहीं पूछ रही हैं ? मैं ज़रा दीर्घसूत्री हूं। बहुतेरी बातें ज़रा देर मे समझ पाता हूं !"

'वेल सेड' कमलेश के सस्मित मुख से निकल गया। लीला संकुचित-स्तब्ध हो उठी। निर्मल हंसने लगा और रानी ने परिहास में कह दिया, "अब और कोई प्रश्न करो !"

संदीप समझ रहा था कि तीर ठीक जगह पर लगा है। मगर यह सब इसलिए कि वह एक असाधारण जन्तु बना हुआ है। लोग उससे किसी न किसी विचित्र उत्तर की आशा भी करते हैं। तब वह मुस्कराने लगा।

भोजन में कमलेश की रुचि की सभी वस्तुएं थीं। देसी घी में डूबे फुलके, बैंगन की कलौंजी, मटर-पनीर की सब्ज़ी, उड़द की धुली हुई दाल, खीर और आम का मुरब्बा, मिस्सी रोटी, हरी मिर्च और पापड़।

संदीप के आगे खीर की जो प्लेट रखी थी, ज्यों ही वह खाली हुई, त्यों ही रानी उसे पुनः भरने लगी। संदीप ने अपने पलक उठा लिए। होंठों पर मन की मादकता झलक उठी। रानी के कन्धे पर लटकता पल्ला खिसक गया। उसकी समुन्नत यौवन-दीप्ति उसकी प्रेरणा का विषय बनने लगी। मन में आया—इसी प्रकार झुकी हुई मुझे खीर परोसती रहो।

और तो कोई कुछ न बोला। पर खटोले में पड़े आनन्द ने करवट बदल ली।

कमलेश अब तक चुप था। अब उसने संदीप को लक्ष्यकर कह

दिया, "नई जगह आने पर भोजन में संकोच होना स्वाभाविक है। पर मुझे आशा है, तुम ऐसा संकोच करोगे नहीं।"

संदीप अटक-अटककर धीरे-धीरे बोला, "मैं अब कुछ छिपाऊंगा नहीं सुलतान। इस समय मेरी मनोदशा समुद्र के उस भाटे की तरह है, जिसमें तट की बहुतेरी वस्तुएं लहर के साथ बह जाती हैं। मालूम नहीं, कितने युग से बह रहा हूं। कहां पहुंचूंगा, कौन कह सकता है? कोई लालसा नहीं रही, कोई इच्छा नहीं होती। फिर भी प्रवाह में बहते हुए पौधों की पत्तियां, फूलों के दल, किसीकी चुन्नी, किसी कदली की बांह मेरे इधर-उधर पड़ गई, तो क्या करूंगा?"

निर्मल ने इसी समय कह दिया, "भाभी, खीर एक प्लेट और लाना संदीप बाबू के लिए।"

"नहीं-नहीं, अब मुझे कुछ न चाहिए।"

कमलेश जान-बूझकर चुप साध गया। लीला ने उसकी प्लेट में खीर परस दी, यद्यपि संदीप मना करता रहा।

निर्मल बोला, "बड़े भाग्य से तुम यहां आ मिले, सो भी ऐसे समारोह के समय। इसलिए हम लोगों का यह अदना-सा आग्रह तुम्हें मान ही लेना चाहिए भैया।"

संदीप संकुचित हो उठा। वह अब किसीसे यह सुनना नहीं चाहता था कि वह अस्वस्थ है। यद्यपि रह-रहकर उसकी आंखें प्रत्येक वस्तु में एक विरल सौन्दर्य देखने को अधीर हो उठती थीं। लीला कुछ दुर्बल थी, रानी सम्यक् मांसल। लीला कुछ चपल-विकल जान पड़ती, रानी कुछ मूक-गम्भीर। दोनों जब द्वार या खिड़की से लगकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई बातें करने लगतीं, तो संदीप को यही भान होता, 'मेरे ही सम्बन्ध की कोई बात होगी।' उस खिलखिलाहट में कमलेश भी खो जाता।··· 'हंसना सबको आता है। मगर लवंग की बात ही और थी।'

अन्त में भोजन समाप्त हुआ। आचमन के बाद संदीप के लिए उसी कमरे में कमलेश का बिस्तर लगा दिया।

अब दो बज रहे थे। कमलेश संदीप को पान-सिगरेट देता हुआ बोला, "अब तुम यहां आराम करोगे। दीदी और लीला भाभी यहीं रहेंगी। हरी भी रहेगा। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो मांग लेना। संकोच की कोई बात नहीं है।"

संदीप बोला, "वैसे तुम आओगे कब तक ?"

"क्यों ? मान लो, मैं नौ-दस बजे तक लौटूं ?"

"तो मैं यहां अकेला रहकर क्या करूंगा ? मैं भी कहीं घूमने चला जाऊंगा।"

"नहीं संदीप, अभी तुम अकेले नहीं जा सकोगे कहीं।"

फिर वह निर्मल के साथ चलते हुए कहता गया, "भाभी, मैं इसको अब तुम्हींको सौंपे जा रहा हूं। दीदी, तुम भी देखना।"

और सीढ़ियां उतरने के मन्द पड़ते हुए पदचाप जैसे लीला से कहते जा रहे थे, 'मेरी मनोदशा समुद्र के उस भाटे की तरह है, जिसमें तट की बहुतेरी वस्तुएं अन्तिम लहर के साथ ही बह जाती हैं।'

मानव-कल्याण-विचारक समाज का अधिवेशन समाप्त हो गया। हेमेन्द्र बाबू बहुत अच्छा बोले। कर्तव्य-निष्ठा पर बल देते हुए उन्होंने कहा, "सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि हम अपने प्रति ईमानदार नहीं रह गए। रात-दिन हम जिस भ्रष्टाचार की बुराई करते हैं, आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी उसीका अवलम्ब लेते नहीं हिचकते। जिस सचाई और ईमानदारी की आशा हम दूसरों से करते हैं, अवसर आ जाने पर उसकी हत्या हम स्वयं कर बैठते हैं। आत्मप्रवञ्चना की यह प्रवृत्ति जब तक दूर न होगी, तब तक हम अपने देश और समाज के नैतिक स्तर को कभी ऊंचा नहीं उठा सकते।"

इस समय प्रबोधबाबू सोच रहे थे, 'बेईमानी किए बिना पैसा जुट

नहीं सकता। नैतिकता को लेकर चाटें कि चूमें ? पेट तो उससे भर नहीं सकता।'

लेकिन आशालता के मन में आ रहा था, 'बस, यही व्यक्ति है, जो दो टूक बात कहना जानता है।'

हेमेन्द्र बाबू ने देश के उन कर्णधारों का भी स्मरण किया, जो अपनी प्रभुसत्ता स्थिर रखने के नशे में मत्त होकर, मिथ्या तत्त्वों को विजयी बनाते रहने में ज़रा भी नहीं हिचकते। जनता की आंखों में धूल झोंककर वे अपने परिश्रम, त्याग और बलिदान का ढिंढोरा तो पीटते हैं, पर यह नहीं देखते कि उनके आश्वासन कितने खोखले, दावे कितने मौखिक और मर्म कितने क्षुद्र और घृणित हैं।

एक एम० एल० ए० साहब के साहबज़ादे के मन में आ रहा था, 'यह बात तो हमारे बाबू पर पूरी तरह लागू होती है। मगर वे तो कहा करते हैं कि वे बेवकूफ हैं, जो समझते हैं कि शिकायतें दूर हो सकती हैं ! ऐसा कभी हुआ है ?—अकर्मण्यता को छिपाने के लिए यह नुसखा भी खूब है।'

अन्त में हेमेन्द्र बाबू ने देश के निखिल तरुण समाज के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए स्नेह-सिक्त वाणी में कहा, "एक तुम्हीं हो, जिनसे हम कुछ आशा रखते हैं। समवेदनाओं से भरा तुम्हारा उभरा-उभरा वक्ष, अनन्त महत्त्वाकांक्षाओं से पूर्ण तुम्हारा स्वप्न-सम्मोहित मानस, भूलों से बचकर चलने और रहने को आतुर तुम्हारा प्रबुद्ध-चेतन भाल और वज्र-कठोर बाहुद्वय हमारी आशाओं का केन्द्र हैं। इस महानतम अनुष्ठान में मैं तुम्हारा सहर्ष आह्वान करता हूं।—तो आओ, संकल्प करो कि देश की लाज-रक्षा के लिए, उसके नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने का यह महान कार्य हमारे जीवन का एकमात्र व्रत होगा। शपथ लो कि हमारा ध्यान कभी इससे विलग न होगा।"

'यह दम तो बापू ही में था कि एक पुकार पर सहस्रों नौजवान अपनी ज़िन्दगी हथेली पर लेकर चुपचाप घर से निकल पड़ते थे। आप

लोग उनकी लकीर पीटे जाइए। उमर आराम से कट जाएगी। अखबारों में अकसर नाम छपता रहेगा! इससे अधिक आपको चाहिए भी क्या?" एक खद्दरधारी मन ही मन कहने लगा।

प्राणदादेवी ने सक्रिय विरोध की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा, "सबसे बड़ा पाप हम तब करती हैं, जब अपने उस बाप को क्षमा कर देती हैं, जो हमारे जन्मसिद्ध अधिकारों की हत्या कर बैठता है और हम उसकी ओर टुकुर-टुकुर ताकती रहती हैं! सबसे अधिक कायरता हम तब दिखलाती हैं, जब गाय बनकर सिर लचाकर उस खूंटे में सहर्ष बंध जाती हैं, जो सामान्य चारा-दाना का आश्वासन देकर निरन्तर हमारी लाज, स्फूर्ति, शक्ति और सेवा को दुहता रहता है! और जब हमारी यह नैसर्गिक सामर्थ्य-सम्पदा क्षीण हो जाती है, तब हम अपने ही दान किए हुए दूध में पड़ी मक्खी बनकर बाहर फेंक दी जाती हैं! जो बहनें यहां उपस्थित हैं, मैं उनसे पूछती हूं, 'बोलो, इस उपेक्षा, अपमान, तिरस्कार और वध से भरी पापिष्ठ परम्परा को आज ही छोड़ने का व्रत लेती हो या नहीं?"

सभी उपस्थित नारियों का समवेत स्वर उस मंडप में व्याप्त हो गया, "लेती हूं।"

इस बात पर कुछ पुरुष मुस्कराने लगे। कुछ उठकर चल दिए। एक ने अपनी पत्नी की ओर संकेत करते हुए कहा, "अरी उठ जल्दी, नहीं तो अभी झोंटा पकड़ता हूं।"

एक महाशय ने कहीं उनकी यह बात सुन ली। तुरन्त वे उनके पास जाकर कन्धे पर हाथ धरकर बोले, "बाहर निकलिए।"

"क्यों?"

"क्योंकि आप गुंडा-सम्प्रदाय के मालूम पड़ते हैं। अभी-अभी आपने क्या कहा था?"

"आपसे मतलब?"

इतने में दो व्यक्ति और आ पहुंचे और उनके बगल में हाथ डालकर,

उन्हें शान्तिपूर्वक बाहर निकालते हुए बोले, "अब मतलब समझ में आ गया होगा !"

कमलेश ने भावना-पक्ष की ओर ध्यान न देकर धीरे-धीरे योजनागत मूल समस्याओं को उठाते हुए कहा :

"मित्रो,

"जहां तक व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं का सम्बन्ध है, मैं मानता हूं कि यदि वे पूर्ण नहीं होतीं, अधूरी रह जाती हैं, तो उसे विद्रोह करने का अधिकार है। उस विद्रोह की भूमि पर वह आस्थाओं की उपेक्षा करे, सम्बन्धित लोगों के विश्वासों को तोड़ डाले, तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि विद्रोही के लिए यह सर्वथा स्वाभाविक है। लेकिन आप जानते हैं कि आवश्यकताओं की सीमा नहीं है, मानवी लालसा असीम होती है, महत्त्वाकांक्षाएं एक से एक बढ़कर हुआ करती हैं। इसलिए व्यक्ति को सदा उलाहना बना रहता है। आप सबको शिकायतें हैं और होंगी। कौन इनकार कर सकता है ? लेकिन विचार करने की बात है—आप केवल व्यक्ति नहीं है, समाज के अंग भी हैं। आपको यह भी देखना पड़ेगा कि जिन व्यक्तियों के बीच हम पैदा होते, पनपते, खाते-पीते और रहते हैं, उनका भी अपना एक जीवन होता है, उनकी भी आवश्यकताएं होती हैं। उन आवश्यकताओं से भी आपका नाता रहता है। तब आपको देखना होगा—वे कैसे रहते, किस तरह जीवन बिताते और कैसे जी लेते हैं ? आप कहें कि उनसे हमारी क्या तुलना ? एक वे हैं, एक हम हैं। भले ही वे दुःखी रहें। पर हम क्यों दुःख सहें ? जबकि ऐसे भी लोग हैं जो हमसे अधिक सुखी और समृद्धिशाली हैं।

"यहीं योग्यता और निपुणता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। हमें देखना पड़ेगा कि आपका स्थान कहां है। आप हैं कितने गहरे पानी में। इस प्रश्न पर आप थोड़ी देर सोचना चाहेंगे। खूब इतमीनान से सोच लीजिए। अन्त में आप देखेंगे कि सत्य की छाती पर शैतान चढ़ बैठा है। शक्ति के बल और प्रचार के माध्यम से जन-जीवन का आर्तनाद दबाया जा रहा

है। पशुता प्रसार पा रही है और आस्थाओं का दम घोंटा जा रहा है। सम्पर्क और संस्तुति के द्वारा अयोग्य आदमी अभीष्ट पद पा जाता है और आप टापते रह जाते हैं। पर व्यक्तिगत विरोध से कुछ कर भी नहीं सकते। अतएव अब आपको संगठित होकर अपने विरोध को सक्रिय बनाना होगा। समाज-विरोधी तत्त्वों पर नियंत्रण रखे बिना अब आप एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। एक युग था, जब व्यक्ति अकेला रहता था। मकान छोटे होते थे। वह अपने परिवार के साथ इच्छानुसार व्यवहार करता रहता था। आप चुपचाप सब देखते-सुनते रहते थे। अब एक मकान में दस-बीस परिवार रहने लगे हैं। पास-पड़ोस का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। ऐसी दशा में अगर कोई अन्याय करता है, तो आपको दखल देने का अधिकार हो जाता है। आप कह सकते हैं कि अपने सामने हम कोई उपद्रव नहीं होने देंगे। मानाकि पत्नी आपकी है, पर मेरे सामने आप उसपर हाथ नहीं उठा सकते। आप कहेंगे, 'आपसे मतलब ?' हमारा कहना है कि अगर वह मर गई, तो न्यायालय के सामने हमें गवाही देनी ही पड़ेगी। इस प्रकार ध्यान से देखें, तो व्यक्तिगत रूप में भी आप सभी समाज-रूपी शृंखला की एक कड़ी हैं। सम्पूर्ण समाज के साथ आपकी मान्यताओं का एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

जिस स्त्री के स्वामी मंडप से बाहर जा पहुंचे थे, वह चुपचाप बैठी सब कुछ सुन रही थी। उसके मन में आता था, 'काश ऐसा सुलझा हुआ व्यक्ति मेरा स्वामी होता !'

कमलेश का वक्तृत्व आगे बढ़ रहा था :

"एक संयोग की बात है कि आस्थाओं को अनेक रूपों में देखने का अवसर मुझे मिलता रहा है। मैंने उसका अमित स्नेहिल रूप भी देखा है और वह निर्मम रूप भी, जिसको मानवी हृदय सह न सका और अन्त में अपने-आप फट गया। मैं आपको क्या बताऊं। आज ही मेरा एक अन्यतम मित्र, जो वर्ष-भर से खोया हुआ था, मुझे अकस्मात् मिल गया। यहां बैठे हुए अनेक साथियों ने उसके विक्षिप्त रूप को देखा है। उसके साथ

मेरे जीवन का निकट सम्बन्ध रहा है। उसीके माध्यम से मैं अपनी बात आपके सामने रखना चाहूंगा। उस बन्धु का नाम तो कुछ और है, पर मैं उसे वनमाली कहूंगा। अभी अधिक समय नहीं बीता, एक दिन बांह थामकर वह मुझे अपने घर ले गया था। उसका कहना था कि मेरी पत्नी तुम्हारी कविताओं की बड़ी प्रशंसा करती है। विवाह हुए तब अधिक दिन नहीं हुए थे। उसकी पत्नी, मान लीजिए उसका नाम चन्द्रभागा था, पढ़ी-लिखी, विदुषी, सुशील और एक सती-साध्वी नारी थी। मैं प्रायः तभी उसके घर जाता, जब वह मुझे अपने साथ ले जाता। फिर धीरे-धीरे मैं स्वयं भी उसके यहां जाने लगा। आजकल अकसर सोचता रहता हूं कि मुझे क्या हो गया था? जो हो, मैं सदा इस बात का ध्यान रखता था कि जब मैं उसके घर पहुंचूं, तो वनमाली उस समय वहां उपस्थित मिले। पर संयोग की बात—ऐसा दिन भी आ गया, जब वह घर में न था। खैर, मुझे थोड़ी देर विवश होकर बैठना पड़ा। चन्द्रभागा ने मेरे लिए चाय बनाई। गरम-गरम समोसे बनाकर खिलाए। मैंने उसे कविताएं सुनाईं। फिर एक दिन वनमाली को अपने कार्यालय के काम से बाहर जाना पड़ा। मुझे ऐसा कुछ मालूम न था। सहजभाव से मैं उसके यहां पहुंचा, तो यह जानकर कि वह बाहर गया है, मेरा माथा ठनका। मैं उठने लगा, तो चन्द्रभागा ने मुझे रोक लिया। फिर उठने को हुआ तो उसने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया कि मैं अकेली कैसे रहूंगी! बात भी ठीक थी, नया मुहल्ला था और उस मकान को लिए हुए अधिक दिन भी नहीं हुए थे। मुझे संकोच तो हुआ, पर लाचारी थी। मुझे वहां ठहर जाना पड़ा। आप जानते हैं, दूसरे कमरे में सोना मेरे लिए स्वाभाविक था।"

कमलेश निर्विकार मन से धीरे-धीरे बोलता हुआ कभी-कभी मुसकराने लगता। लीला उसके मुख पर टकटकी लगाए रहती। कभी-कभी उसके मन में आता, 'मैं ऐसा कुछ नहीं जानती थी तुमको। हाय मैंने कितना गलत समझ लिया था।'

कमलेश का वक्तृत्व चल रहा था।

"बड़ी रात तक चन्द्रभागा से मेरी बातें होती रहीं। अन्त में दूसरे कमरे में जाकर सो गया। चन्द्रभागा अपने कमरे में लेट गई। कोई एक बजे का समय रहा होगा, अचानक मेरी आंख खुल गई। बत्ती बुझी हुई थी, फिर भी मेरी दृष्टि अपने कमरे के द्वार पर जा पहुंची, जो भूल से उढ़का रह गया था। इतने में मैं क्या देखता हूं, कपाट के खुले भाग से एक छाया-सी दिखलाई पड़ रही है।

"एक आश्चर्य के साथ मेरे मुंह से निकल गया, 'कौन ?'

"चन्द्रभागा बोली, 'और कौन हो सकता है ?'

"मैंने झट बत्ती जला दी और पूछा, 'इस समय कैसे ?'

"वह द्वार पर ही ठिठक गई और संकुचित होकर बोली, 'यों ही। नींद नहीं आ रही थी।' मैंने सोचा—'देखूं अगर जग रहे हों, तो कुछ बातें ही करूं।'

"मैंने कह दिया, 'तो आइए। मैं आपको कविताएं सुनाऊं।'

"नतशिर हो उसने उत्तर दिया, 'नहीं, अब आप सोइए। आपको शायद मालूम नहीं मैं उस जन्म में भी पगली थी।'

"मेरे पास उसकी इस बात का कोई उत्तर न था। वनमाली मेरा बालबन्धु है, उसकी अनुपस्थिति में अन्यथा सोचना···। ना, ना, ना ! लेकिन चन्द्रभागा की यह अभिव्यञ्जना, उसका द्रवित रुद्ध कण्ठस्वर, मेरे प्रति उसकी एक भावना !

"लौटकर जब वनमाली मुझसे मिला, तब तक वह अपने को भूल चुका था। मकान के नीचे रहनेवाले लोगों ने उससे न जाने क्या-क्या जड़ दिया था ! फलतः उसका मन टूट गया, दिल फट गया। चन्द्रभागा ने उसे बहुतेरा समझाया, पर उसने उसकी किसी बात पर विश्वास नहीं किया। तब उसी दिन वह गंगा में डूब मरी।····"

इतने में उपस्थित जनता के बीच से एक व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया और बोला, 'वह वनमाली मैं हूं। मेरा कहना है कि आप भले ही देवता

बनें, पर आप कृपाकर हर आदमी को देवता न बनने दें। मैं पूछता हूं, तुमने मेरा इतना ध्यान क्यों रखा? चन्द्रभागा को तुमने अछूता क्यों छोड़ दिया? मान लो, मेरे साथ विश्वासघात ही होता, पर उस दशा में वह जीवित तो बनी रहती—उसका अस्तित्व तो न मिटता। प्राण-त्याग तो वह न करती। मेरे दिल पर क्या बीता है, काश तुम समझ पाते! अपने अस्तित्व के लिए विपथगामिनी होनेवाली नारी जीवित तो रहती है। हम ऐसी आस्था-निष्ठा को लेकर क्या करेंगे, जिसके परिपालन में हमारा जीवन ही समाप्त हो जाएगा।"

संदीप शायद और भी कुछ कहता—पर अब उसकी आंखों में आंसू भर आए और कण्ठ आर्द्र हो उठा था।

तभी कमलेश बोला, "कहां हो निर्मल? संभालो इसको।"

रानी निर्मल से कह रही थी, "मैं कर ही क्या सकती थी! जब उन्होंने कहा, 'मुझे वहीं ले चलो,' तब मुझे लाचार होकर आना ही पड़ा।"

निर्मल संदीप की ओर बढ़ रहा था। सारी सभा स्तब्ध थी। लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे।

हेमेन्द्रबाबू अधिकारीजी से कहने लगे, "यह आदमी तो बड़ा भयानक साबित हुआ!"

अधिकारीजी बोले, "मुझे कुछ मालूम न था।"

अब कमलेश ने कुछ अस्थिर दयनीय-सा होकर कह दिया, "आपने देखा, हम किस स्थिति में हैं? आस्थाओं को कुचलकर चलो, तो पशु बनो और उनका निर्वाह करो तो उलाहना सुनो! चित भी मेरी और पट भी मेरी। मतलब यह कि सही मार्ग पर चलना ही आज दुष्कर हो उठा है! ऐसी दशा में आत्म-विश्वास खोकर हम कहां होंगे! जिस वनमाली को मैं अपना समझता था, उसने मुझपर ही नहीं, अपनी प्रियतमा पर भी अविश्वास किया! आखिर क्यों? कदाचित् इसलिए कि वह मनुष्य की आन्तरिक पवित्रता की अपेक्षा, परिस्थितियों के लक्षण, गुण, धर्म पर

अधिक विश्वास करता है। शायद उसकी मान्यता है कि सामान्य व्यक्ति ही समाज के लिए अधिक उपयोगी है। उसके मन में कितना कूड़ा-कचरा भरा है, इस बात से उसे कोई मतलब नहीं। मैं ऐसा नहीं मानता। मेरी धारणा है कि सभ्यता को गति उन लोगों ने दी है, जिन्होंने भूख सही और उपवास किए हैं। जो स्थान के अभाव में सड़कों पर सोए हैं, जिन्होंने भोजनालयों और जलपान-गृहों के बर्तन मले हैं। बी० ए० कर लेने के बाद अखबार बेचने का काम किया है। जैसी पत्नी मिल गई, उसीके साथ जीवन बिता दिया! लेकिन आस्थाओं की रेशमी चोली पर वासना की नागिन नहीं छोड़ी! जैसे पति-देवता पल्ले पड़ गए, पड़ गए; उन्हींका मुंह देख-देखकर जीवन उत्सर्ग कर दिया। लेकिन आस्थाओं पर आंच नहीं आने दी। बच्चों और स्वामी को यह आश्वासन देकर खाना खिला दिया कि मैंने अभी-अभी खाया है और स्वयं नमक चाटकर या गुड़ की एक डली ही मुंह में डालकर, ऊपर से गिलास भर पानी पीकर लेट रही। अवसर आने पर स्वामी की प्रतीक्षा में सारी रात दीवार से लगी बैठी रही, पलकें नहीं झपकने दीं, कोरी आंखों भोर कर दिया। प्रतीक्षा की ये रातें कभी-कभी बीस-बीस, तीस-तीस वर्ष लम्बी हो गईं। आंखों की ज्योति समाप्त हो गई, लेकिन मिलन की आशा का आंचल नहीं छोड़ा। फिर एक दिन जीवन की अन्तिम लौ भी बुझ गई। लेकिन पीपल की डाल पर आशादीप जलता रहा। बच्चे नहीं हुए, न सही, पर किसीको यह नहीं बतलाया कि असली बात क्या थी! सास-ससुर, जेठ-देवरों, ननदों से भरे घर में सदा के लिए आंखें मूंदते क्षण किसीसे यह नहीं कहा कि ज़रा उन्हें बुला दो। अन्तिम बार उन्हें पास देखकर पलकों में छिपा लूं। चितवन से ही एक प्यार दे दूं, एक प्यार ले लूं! विधुर हो जाने के बाद फिर स्वामी ने भी विवाह नहीं किया और सारा जीवन यों ही बिता दिया। सूखा, उदास, न तर, न नमकीन। बच्चों को एक क्षण के लिए दुःखी होने का अवसर नहीं दिया। आप समझते हैं, सभ्यता के ये राजप्रासाद यों ही खड़े हो गए हैं!

"लोग आज अस्तित्व-स्थापना में तरह-तरह की बातें करते हैं। सुनने में वे बड़ी अच्छी लगती हैं। पर अपने भाइयों को मरवाकर जिस औरंगज़ेब ने अपनी मुराद पूरी की, उसने कैसा राज्य-सुख भोगा ? उसके खून से रंगे हुए हाथों ने उसका मुख कितना उज्ज्वल रखा ? फिर उसके सौख्य की भी क्या स्थिति थी ? कहते हैं—अन्तिम काल में वह अपनी काली करतूतों पर पछताते हुए सिर के बाल नोचने लगता था !

"आज तो स्थिति यहां तक जा पहुंची है कि घर के भोजन से तृप्ति ही नहीं होती। सप्ताह में दो बार होटल में भोजन हो, फिर केवल पत्नी के साथ भोजन करने में 'चार्म' क्या है ? साथ में कोई कालेज-गर्ल भी होनी चाहिए। उसके बाद फिर उस गर्ल के साथ गोपनीय कार्यक्रम और उसके फलाफल का विन्यास और संकट के समय किसीसे पांच-सौ रुपये ले लिए। फिर लौटाने की क्या ज़रूरत है ? किसीने पुकारा—'शर्माजी, शर्माजी !' आप घर के अन्दर बैठे सुन रहे हैं। स्वर से पहचान लिया, कौन है। बच्चे से कहला दिया, 'कह दो, घर में नहीं हैं।' कहीं कीमती पुस्तक देखी—कह दिया, 'पढ़कर लौटा देंगे।' शाम को आधे दामों पर किसी बुकसेलर को दे आए। रात को किसी रेस्तरां में बैठकर यार लोगों को चाय पिला दी। उनपर एक प्रभाव डाल दिया। 'कुछ हो, आदमी बड़ा मस्त है। पैसे की परवाह नहीं करता।' बहिन की जेठानी ने साड़ी लाने के लिए बीस रुपये दिए थे। आपने दोस्तों के साथ कीमा-कबाब और सिनेमा में उड़ा दिए ! महीनों शकल नहीं दिखलाई। जब रास्ते में कहीं घर लिए गए, तो कह दिया, 'रुपये मुझसे गिर गए थे। साड़ी कहां से लाते ?'

"'तो यही बात घर में कह जाते।'

"'कहने की ज़रूरत ? जब रुपये होंगे, तब दे जाएंगे। देख नहीं पड़ता, कितने दिनों से बेकार हूं ? बड़े रुपयेवाले बने हो। मुझे सब मालूम है। यह सूची बहुत बड़ी है। अब आपको क्या बतलाऊं !"

अब कमलेश का गुरु-गम्भीर स्वर धीरे-धीरे उतरकर मन्द पड़ता जा

रहा था। कभी-कभी कोई शब्द कांप-कांप उठते। लेकिन भाषण-क्रम बराबर चल रहा था :

"साथ बैठनेवाले कई ऐसे लोगों को अन्त में सड़कों के फुटपाथ पर सदा के लिए मुंह बाए, दांत निकाले, फटी आंखें खोले निर्जीव पड़ा देख चुका हूं। कपड़ों से दुर्गन्ध फूट रही है। मुंह ही नहीं, सारे बदन पर मक्खियां भिनक रही हैं। कुछ मित्रों के साथ जब लौटकर आया हूं, तब तक नगर-पालिका की गाड़ी उठा ले गई है और बिना जलवाए गंगा में फिकवा दिया गया है। ऐसा नहीं है कि इन लोगों के माता-पिता नहीं थे ! ऐसा भी नहीं है कि उनसे स्नेह रखनेवाले नहीं थे ! केवल एक बात ने दरारें पैदा कर दी थीं। और वह बात थी आस्था। उन्होंने सचाई को ढोंग, ईमानदारी को पाखण्ड समझ लिया था ! आज भी जब उनकी याद आ जाती है, तो हृदय बैठने लगता है। फिर यही सोचकर रह जाता हूं कि जब व्यक्ति किसीके प्रति विश्वसनीय नहीं रह जाता, तब उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। उसे कोई बचा नहीं सकता। मैं भी उन्हें बचा नहीं सका। कभी-कभी वे स्वप्न में दिखाई दे जाते हैं, तो उठकर बैठ जाता हूं। अंधेरी रात में दो-तीन बजे का समय। पवन डोलता है, वृक्षों की पत्तियां बोलती हैं। जानता हूं, कहीं कोई नहीं है। लेकिन फिर यह बोली किसकी थी ? यह किसने मेरा नाम लेकर पुकारा था ? कौन उत्तर दे ? और उत्तर न मिलने पर आह भरने या आंसू गिरा देने से ही क्या होता है !"

कथन के साथ अन्त में कमलेश भावना में डूबने लगा। हेमेन्द्र बाबू की आंखें डबडबा उठीं। निर्मल रूमाल निकालने लगा। अधिकारीजी निःश्वास ले रहे थे। सिंहजी, प्राणदा, आशालता आदि सभी उपस्थित जन-समुदाय के अधिकांश स्त्री-पुरुष मर्माहत होकर आंसू पोंछने लगे। भर्राए हुए स्वर में प्रबोधबाबू बोले, "बस करो भाई, बहुत हो गया !"

लेकिन कमलेश रुका नहीं। वह बोलता जा रहा था :

"तो अन्त में मेरा यही कहना है कि मानव-धर्म ही सबसे बड़ा है।

उसीकी रक्षा और संवृद्धि में हमारा जीवन उत्सर्ग होना चाहिए। अगर हमने आस्थाओं को नष्ट हो जाने दिया, तो सभ्यता विधवा हो जाएगी, समाज बर्बर हो उठेगा और हमारा अस्तित्व भी नष्ट हुए बिना न रहेगा। इनका सायुज्य ही प्रगति का एकमात्र पथ है। माना कि सभ्यता के चरण जहां तक आगे बढ़ आए हैं, उसके पीछे तो अब जाने से रहे ! पर आप पीछे फिरकर न देखें, तो आगे तो देखकर चलें। मेरा यही निवेदन है।

"वास्तव में मैं अन्त में आप लोगों को धन्यवाद देने के लिए उठा था। लेकिन मालूम नहीं क्यों, बिना कुछ बोले मुझसे रहा नहीं गया। मैं आप लोगों को धन्यवाद क्या दूं ? सारा आयोजन आपका। सफलता भी आपकी। आशा है, आप लोग अपने घर लौटकर इस कार्य को आगे बढ़ाएंगे। केवल यह सोचकर कि हमारी नई पौध उन गलतियों से बचे, जो हमसे या हमारी पीढ़ी से हुई हैं !"

भाषण समाप्त करने के बाद जब कमलेश अपने स्थान पर आया, तो संदीप ने उसे छाती से लगाते हुए कहा, "बहुत अच्छा बोलते हो सुलतान। पर जान पड़ता है, मेरे कहने का बुरा मान गए। अरे मैं तो मज़ाक कर रहा था।"

कमलेश ने उत्तर दिया, "तुम्हारी बात ही और है। तुम सम्पूर्ण जीवन के साथ मज़ाक कर सकते हो !"

प्रीति-भोज में उपस्थित आशालता के साथ सिंहजी को बात करते हुए देखकर कमलेश ने पूछा, "कहिए सिंहजी, आप लोगों में फिर मिलन हो गया कि नहीं ?"

आशालता कपोलों में हंसती हुई बोली, "आपके भाषण से प्रभावित होकर मैंने जब इनकी गीली आंखें देखीं तब मैंने सोचा, 'इतना ही काफी

है। अब समझौता कर लेने में कोई हर्ज नहीं है।'" फिर स्वामी के कन्धे को अंगुली-स्पर्श से दुलराते हुए कह दिया, "अब बोलते क्यों नहीं ?"

सिंहजी संकुचित हो उठे थे पर अब उन्होंने सिर उठा लिया। बोले, "मुझे आप लोगों ने नया जीवन दिया है। हमारे बीच कोई ऐसा आदमी न था, जो उस तरह डांट सकता, जिस तरह कल आपने हमें डांटा था। और आज तो आपने हद कर दी !"

प्राणदाजी तब तक पास आ गईं। निर्मल कमलेश से कहने लगा, "प्राणदाजी ने तो आज से ही क्रान्ति शुरू कर दी। एक महाशय भरी सभा में अपनी बीवी को कुछ धमका रहे थे। परिणाम यह हुआ कि दो आदमी उस जोड़े के पीछे लग गए हैं ! उनका कहना है कि अगर उसने घर में किसी प्रकार की मारपीट की, तो उसकी तबियत झक कर दी जाएगी। घर देख लेना इसीलिए ज़रूरी हो गया है।"

कमलेश ने मैच बाक्स पर सिगरेट ठोंकते हुए कह दिया, "पर आप तो कुछ विचारमग्न जान पड़ती हैं।"

प्राणदाजी गम्भीरता से सोच रही थीं, "मुझे भी अपने लिए कुछ करना पड़ेगा। मैं सीधे उसी प्रतिष्ठान में जाऊंगी और उस स्टेनो से भी मिलूंगी। मैं उन्हें छोड़ नहीं सकती। मैंने अपने भड़कते हुए अहंकार पर नियंत्रण नहीं रखा न ?"

फिर उन्होंने सकुचाते-सकुचाते कहा, "अपने भाषण में आपने कुछ ऐसी बातें कही हैं, जिन्होंने मेरे मन में उथल-पुथल मचा दी है। क्या आप आज थोड़ा-सा समय नहीं दे सकते ?"

इतने में पीछे खड़ी सारी बातें सुनती हुई लीला कमलेश को लक्ष्य कर बोली, "पर आज तो तुमको मेरे घर चलना है।"

कमलेश ने उत्तर दिया, "मैं प्राणदाजी की बात सुनकर ही कहीं चल सकता हूं।"

तभी तारवाला आ पहुंचा। बोला, "कमलेशकुमार साहब के नाम एक तार है।"

कमलेश ने हाथ बढ़ाकर तार का नम्बर देखा, फिर झट फार्म पर हस्ताक्षर कर दिए।

तार के शब्द थे :

"तबियत नहीं लग रही। आ जाओ न।

मल्लिका"

तार पढ़कर कमलेश मुस्कराने लगा। निर्मल ने पास आकर पूछा, "क्या मामला है ?"

कमलेश ने सिगरेट का एक कश लेते हुए उत्तर दिया, "कोई खास बात नहीं। तुम संदीप को देखना। मैं ज़रा देहरादून जाऊंगा।"

निर्मल ने पूछा, "कब ?"

लीला ने उत्तर दिया, "कल।"

निर्मल लीला की ओर देखता रह गया। और कमलेश मुस्कराने लगा।

रानी निर्मल को अलग ले जाकर कुछ फुसफुसाने लगी।

तब तक प्रबोधबाबू बोल उठे, "अब आप लोग भोजन करने की कृपा करें।"

संदीप एक कुरसी खींचकर कमलेश के पास आ बैठा और बोला, "सच-सच कहना सुलतान, आज अगर तारिणी भी यहां उपस्थित होती तो..."

कमलेश ने टमाटर के रस की चुसकी लेते हुए, उसके कान के पास मुंह ले जाकर उत्तर दिया, "तुमको इन देवियों में से किसीमें तारिणी की झलक नहीं मिलती ? मैं तो लवंग के साथ ही अपने-आपको देखता हूं। आत्मा को एक बार निर्विकार बना सको, तो अमृत के झरने सदा सामने मिलते हैं।"

"बस, तुम्हारा यही रूप मुझे पसन्द आता है। लेकिन...।"

"लेकिन क्या ?"

संदीप एक निःश्वास छोड़ते हुए बोला, "दिखाई देने या सामने ही मिल जाने से क्या होता है ? तारिणी के बलिदान ने मुझे यह सिखला

दिया कि आदमी के प्रति आदमी का विश्वास भी तो कोई वस्तु होती है। जो कुछ हुआ सो हुआ. लेकिन तुमने जो आदर्श निभाया, उसका कोई जवाब नहीं है। मगर कभी-कभी मन में आता है—'सबसे भले हैं मूढ़, जिनहि न व्यापै जगत-गति।"

कमलेश सोचने लगा, 'कभी-कभी तो इसकी बातें बड़ी सधी हुई होती हैं। लेकिन सभा के बीच में इस प्रकार बोल उठना……! ना, उसका भी अपना एक महत्त्व है।'

प्रीति-भोज समाप्त हुआ। कमलेश ने प्रबोध को और फिर सभी प्रतिनिधियों को धन्यवाद दिया। मर्मस्पर्शी वाणी में उसने कहा, "जानता हूं, ये घड़ियां फिर न लौटेंगी, लेकिन आशा है, हम फिर मिलेंगे। जानता हूं, परिस्थितियां नये मोड़ ले सकती हैं, लेकिन इतना विश्वास है मुझे कि हमारी योजना सफल और साकार रूप धारण करेगी। मान लो, हममें से कोई फिर न मिल पाए, उस दशा में भी हमारा कारवां आगे बढ़ता रहेगा।"

फिर हेमेन्द्र बाबू ने सबको धन्यवाद दिया। क्रम-क्रम से सबका नाम ले-लेकर उन्होंने कहा, "निर्मल ने मुझे बड़ी प्रेरणा दी। अधिकारीजी ने बल दिया। प्राणदाजी ने तो मुझे अपना भाई बना लिया। आशालता ने झुककर हृदय के वातायन खोल दिए। रानी ने आनन्द को गोद में दे दिया। प्रबोधबाबू तथा लीलाजी का यह प्रीति-भोज कभी नहीं भूलेगा। आप सभी मुझे सदा याद आएंगे। कमलेश की प्रशंसा करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। एक उसीका व्यक्तित्व मुझे चारों ओर गूंजता जान पड़ता है। भगवान करे, वह शतंजीवी हो।"

मल्लिका खिड़की के पास खड़ी थी। पवन-झकोरे से उसके केशों की एक लट उड़ रही थी। डेढ वर्ष के बच्चे जयंत के मुख पर लगे पाउडर

की मन्द गन्ध उसे प्यारी लग रही थी। चुम्बन-विकल अधर अभी उसके मुख पर ही स्थिर थे। एकाएक वंशी ने आकर कहा, "कोई साहब आए हैं बाहर से।"

"नाम नहीं पूछा ?" एक बार जयंत की कुतूहल से भरी आंखों की ओर से ध्यान हटाकर मल्लिका ने पूछा।

"पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी दीदी।" वंशी ने अपनी भोली प्रकृति से उत्तर दिया।

"सूरत-शक्ल से कैसे मालूम पड़ते हैं ?"

"जैसे साहब लोग होते हैं, बिलकुल वैसे। सिर्फ हैट नहीं है सिर पर।"

एक अटूट विश्वास के साथ मल्लिका ने कह दिया, "यहीं लिवा लाओ उनको। सामान पास के कमरे में रख लो।" फिर वह जयंत को अंक से लगाकर कहने लगी, "यह कौन आ रहा है जयंत, तुम्हारे यहां ?"

कमलेश ने खिलौनों से भरा एक डब्बा हाथ में लिए हुए प्रवेश किया।

मल्लिका बोली, "मैं सोच ही रही थी अब या तो तुम आ जाओगे, या तुम्हारा तार आता होगा।"

कमलेश ने जयंत को उसकी गोद से लेकर प्यार करते हुए पूछा, "पहचाना कि नहीं ?"

कमलेश दरी के फर्श पर उकडूं बैठा खिलौनों का डब्बा खोल रहा था।

इतने में मल्लिका की मामी आ पहुंची और प्रसन्नतापूर्वक बोलीं, "नमस्ते भैया।"

"नमस्ते मामी। कहिए, आप आनन्द से तो हैं ?"

"भैया और तो सब ठीक है। यही मल्लिका की चिन्ता दिन-रात मन को कुरेदती रहती है।"

मल्लिका अब स्वेटर बुनने में संलग्न हो गई थी।

कमलेश ने जयन्त को खिलौनों में उलझा दिया था। घुटनों के बल चलता हुआ वह कभी किसी गुड़िया के सिर को मुंह में धर लेता, कभी गौरैया को। कमलेश जब उसको दबा-दबाकर उसके छेद से चूं-चूं के स्वर निकालने लगता, तो जयन्त मुंह खोल देता।

कमलेश रेलगाड़ी में चाभी भरता हुआ बोला, "तो अभी यह चिन्ता गई नहीं आपकी ?"

मामी ने उत्तर दिया, "चिन्ता सहज ही तो दूर होती नहीं भैया। समाज के सामने सिर ऊंचा करके चलने योग्य मर्यादा भी तो होनी चाहिए।"

मल्लिका सोच रही थी, 'फिर इन्होंने दिमाग चाटना शुरू कर दिया !'

कमलेश बोला, "वह भी मैंने प्राप्त कर ली है मामी। आपको मालूम होना चाहिए कि सर्वभारतीय मानव-कल्याण-विचारक समाज का प्रधानमन्त्री आपके सामने खड़ा है।" फिर उसने जयन्त की ट्रेन भ्रू छोड़ दी। जयन्त उसके पीछे घुटनों के बल दौड़ने लगा।

"चलो, तुमने यह खुशखबरी अच्छी सुनाई। रात वे भी अंगरेजी में मल्लिका से ऐसा ही कुछ कह रहे थे और बड़े खुश थे। मैं कुछ समझ नहीं पाई थी। जाऊं, तुम्हारे लिए कुछ नाश्ता बना दूं।"

मल्लिका मन ही मन बोली, 'बनाओ भी कुछ झट से।' फिर परदे के पीछे विभाजन के भीतर से, बुनाई के छेदों में सलाइयां घुमाती और फन्दे डालती हुई गुनगुनाने लगी, 'बुरा मत मानना, मिलने का वचन नहीं देती हूं।'

हंसता-हंसता कमलेश बोला, "क्या कहा, फिर तो कहना ?"

इतने में वंशी ने आकर पूछा, "मांजी पूछ रही हैं, चाय के साथ के लिए टोस्ट और दाल-मोठ तो रखी है। कोई परहेज न हो तो मिठाई की जगह हलुआ बना लूं।"

कमलेश कुछ बोलने जा ही रहा था कि मल्लिका ने उत्तर दिया :

"हलुआ जरूर बनेगा और उसमें पिश्ता, बादाम और चिरौंजी भी पड़ेगी। और जयन्त को थोड़ी देर बहलाओ न वंशी ! साहब शायद बाथरूम जाना चाहें।"

कुछ खिलौनों के साथ वंशी जयन्त को गोद में लेकर लॉन पर चला गया।

मल्लिका बोली, "किवाड़ उढ़का दो और ज़रा यहां आओ।"

कमलेश अन्दर पहुंचा था कि मल्लिका ने स्वयं कमलेश के गले में बांहें डालकर उसे अपने बाहुपाश में भर लिया। कमलेश ने भी प्रतिदान में उसके अधरों पर प्यार की छाप लगा दी। क्षण-भर दोनों परस्पर मूक-स्तब्ध रहकर आंखों-आंखों में बातें करते रहे। अन्त में कमलेश बोला, "आज से हमारा नया जीवन प्रारम्भ होता है।"

"वह तो बहुत पहले से प्रारम्भ हो चुका है। फिर भी पिछली बार तुम्हें शिकायत रह गई थी कि इधर वर्षों से विश्वास और प्यार की सीमाओं को छूनेवाले जिन पवित्र क्षणों से तुम वंचित रही हो, जब तक उनको प्राप्त न कर लो अपने अस्तित्व का प्रत्येक कण अपना न बना लो तब तक तुम लवंग को कैसे भूल सकते हो। और अब मैंने सोचा, 'अब तुम्हें और लटकाना ठीक नहीं है।'"

"यह मैं तुम्हारे तार की शब्दवली से ही समझ गया था। लेकिन वह पहुचा बिलकुल ठीक समय पर। क्योंकि इस बीच मैं ऐसी परिस्थितियों से बिलकुल घिर गया था कि कुछ भी हो सकता था।"

किसीके प्यार ने अपनी ओर खींचना शुरू कर दिया था ?"

"समझ लो, बिजली का करेंट लगा ही था कि मेन स्विच आफ हो गया। जिस नारी के साथ केलि-क्रीड़ा शुरू होने जा रही थी, संयोग से उसके स्वामी आ पहुंचे।"

"लेकिन तुम इस सीमा तक आगे कैसे बढ़ गए ?"

"मैं आगे नहीं बढ़ा, बल्कि कहना चाहिए, पीछे ही खिसकता रहा, लेकिन संयोग से सीमाएं ही स्वयं पास आकर मुझे छूने लगीं। कुछ ऐसी

बात भी है कि इस मामले में सदा सौभाग्यशाली रहा हूं। ऐसा नहीं है कि कभी प्यास न लगी हो। लेकिन न जाने क्यों, न जाने कैसे, प्यास लगते ही, कोई न कोई शरबत का गिलास लेकर सामने आ पहुंचता रहा है।"

"तब तो तुम्हारी यह विजय प्रकारान्तर से मेरी विजय है। मेरे सौभाग्य की विजय है। लेकिन किसी तरकीब से जान छुड़ाकर भाग नहीं सकते थे? संयम को जोखिम में डालना कभी-कभी बड़ा अनर्थकारी होता है। तुम जानते ही हो, मैं स्वयं भोग चुकी हूं।"

"इस मामले में कोई भी पक्ष दोषी होता है, मैं इसे मानने से इन्कार करता हूं। रिक्तता की सम्पूर्ति होगी, खाली स्थान भरेंगे ही, चाहे जिस प्रकार भरें। यह प्रकृति का नियम है।"

निर्मल ने संदीप को प्रबोधबाबू के घर ठहरा दिया। दस-पांच दिन में आपसे-आप वह बिलकुल ठीक हो गया। और अब तो वह विधिवत् उनकी दुकान में भी बैठने लगा था। एक पत्र में निर्मल ने इसी बात को लेकर कमलेश को लिखा था, "कुछ बातें कही नहीं जाती। वे केवल समझ ली जाती हैं।"

विवाह की वह रात बड़ी सुहावनी थी। जयन्त कमलेश के साथ सो रहा था। और पुलकित मल्लिका बोल रही थी, "मैंने तुम्हें जान-बूझकर एक बात नहीं बतलाई।"

"कौन-सी बात?"

मल्लिका ने बतलाया, "वे मेरे पास आए थे। उनका कहना था कि अब वे मेरे साथ विधिवत् विवाह कर सकते हैं।"

"फिर तुमने क्या उत्तर दिया?"

"मैंने यही कह दिया, 'ना, अब कुछ नहीं हो सकता। टूटी आस्थाएं जोड़ने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। एक दिन तुमने अपने पिता की आड़ लेकर अपने अस्तित्व की बाज़ी लगाई थी, आज मैं लगा रही हूं। तुम्हारे यहां तैयारी तो यह थी कि अगर मैं न्यायालय की शरण लूं, तो मुझे चरित्रहीन सिद्ध किया जाए, ताकि मैं कहीं की न रहूं!'

" उन्होंने उत्तर दिया, 'यह सब मेरी अनुपस्थिति में हुआ होगा। वे बातें अब पुरानी पड़ गईं। जिनके साथ थीं, वे भी अब इस दुनिया से उठ गए। तुम्हें मालूम होना चाहिए, मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो चुका है!'

" मैंने उत्तर दिया, 'मगर मूल प्रश्न तो अस्तित्व के लिए अपनी आस्थाओं को गिरवीं रखने का है। तुम रख सकते हो, मैं नहीं रख सकती।"

"फिर ?" कमलेश ने पूछा।

"फिर वे चुपचाप चले गए।" मल्लिका ने उत्तर दिया।

कमलेश बोला, "तो इसमें छिपाने की क्या बात थी ?"

"छिपाने की बात सचमुच नहीं थी कवि। लेकिन न जाने क्यों, मुझे यही प्रिय जान पड़ा। शायद इसलिए कि इसमें मुझे अपने उस गौरव की झलक दिखाई पड़ी, जिसे अब तक मैंने कभी प्रकट नहीं होने दिया।"

इसी क्षण उसकी दृष्टि स्टूल पर रखे गिलास की ओर जा पड़ी। हाथ बढ़ाकर उसे छूकर देखा, तो बोली, "ठहरो, अभी गरम किए देती हूं।"

फर्श पर गुलाब के फूलों की पंखड़ियां बिखरी पड़ी थीं। उन्हें बचाकर चलने लगी, तो कमलेश मुस्कराने लगा।

मल्लिका ने एक बार कनखियों से उसे देखा, फिर बन्द द्वार की दोनों सिटकिनियां खोल वह बरामदे में चली गई।

अब उसके पलंग पर केवल जयन्त था। तभी सहसा कमलेश को

लवंग का स्मरण आ गया। फिर वह खिल-खिल-भरी हंसी भी सुनाई पड़ने लगी।

कमलेश विचार में पड़ गया।

पांच मिनट में मल्लिका पुनः लौट आई। अब दूध का वही गिलास कमलेश के सामने था।

वह धीरे-धीरे एक-दो घूंट कण्ठ के नीचे उतारता हुआ बोल उठा, "अभी तुम्हारे बाहर जाते ही कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे लवंग यहीं खड़ी-खड़ी हंस रही है।"

"फिर?"

"फिर मैंने उससे कह दिया, 'प्रेम-सम्बन्धी रिक्तता की सम्पूर्ति में सभी मूर्ख बनते हैं लवंग! और इसी मूर्खता का दूसरा नाम सृष्टि है, जो देवताओं को भी प्यारी होती है। हम तो मनुष्य हैं!"

मल्लिका उस समय जयन्त की ओर देख रही थी, जो अब सोता हुआ मुस्करा रहा था।

